प्रथम अध्याय
तबले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी

प्रस्तावना :

तबला वाद्य के उत्पत्ति के संदर्भ में आजतक कई विद्वानों ने अनुसंधान किए हुए हैं। इस विषय के बारे में अपने सोच विचार अनेक ग्रंथों द्वारा लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया हैं, लेकिन तबला वाद्य की उत्पत्ति कहाँ और कैसे हुई तथा उसका अविष्कार किसने किया यह प्रश्न तबला वादकों एवं विद्वानों में आज भी एक पहेली बना हुआ हैं। तबला एकमात्र ऐसा साज है, जिसपर विस्तारक्षम रचनाओं का वादन किया जाता है और इसका कारण तबला वाद्य की बनावट एवं बाज यह रहा हैं। तबले की रचनाओं को समजने से पहले तबला वाद्य की ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि को जानना अत्यंत आवश्यक हैं इसलिए इस अध्याय में सब से पहले तबला वाद्य का उद्‌गम एवं विकास तथा तबले के बाज और बनावट को प्रस्तुत किया गया हैं। इस अध्याय में तबले के अनेक विदवानोंद्वारा तबले के निर्मिती के बारे में सोच–विचारों का भी अवलोकन किया गया हैं। पखावज को तबले का जनक वाद्य कहाँ जाता है, इसलिए पखावज और तबले के बाज की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास शोधार्थी ने इस अध्याय में किया हुआ हैं।

प्रस्तुत अध्याय में कुछ प्रचलित अवनद्ध वाद्यों के बारे में सचित्र जानकारी दी गई हैं तथा अवनद्ध वाद्यों में तबला यह वाद्य बाज और बनावट की दृष्टिकोन से किस प्रकार सफल रहा? इसे दर्शाने का प्रयास किया गया हैं। स्वतंत्र तबला वादन में बाज तथा घरानों की भूमिका किसप्रकार महत्वपूर्ण रही? इसलिए प्रस्तुत अध्याय में घरानों का निर्माण तथा पारंपारिक गुरू–शिष्य परंपरा इसपर भी दृष्टि डाली गई हैं तथा तबले के प्रमुख घरानों की विधिवत जानकारी भी देने का प्रयास शोधार्थी ने किया हुआ है।

1.1. तबला वाद्य की उत्पत्ति :

तबला वाद्य आधुनिक युग का एक अत्यंत लोकप्रिय, प्रचलित एवं सब से पुराना अवनद्ध वाद्य हैं। प्रारंभ में गायन तथा वाद्य संगीत के लिए साथसंगत करने के प्रमुख उद्देश्य से निर्माण हुआ यह साज साथसंगत और स्वतंत्र वादन इन दोनों विधाओं में अपनी जिम्मेदारी बखुबी निभा रहा हैं। तबला वाद्य के उत्पत्ति के बारे में निर्विवाद रूप से कुछ कह पाना सम्भव नहीं हो पाया है, फिर भी तबले के जनक या निर्माणकर्ता तथा इस वाद्य के कालसमय के बारे में कोई भी ठोस जानकारी हासील नहीं हो पायी हैं। कहाँ जाता है कि, पखावज या मृदंग से तबला वाद्य का निर्माण हुआ। पखावज के दो भाग करने के पश्चात 'टुटा तब भी बोला' इसका अपभ्रंश 'तबला' जैसी कई मनोरंजन करनेवाली किवदंतियाँ बतायी जाती हैं, लेकिन इसका कोई भी शास्त्रीय आधार नहीं है। अगर, पखावज की कुछ बद्धियाँ कट गयी तो सही आवाज नहीं निकलती, तो पूरा पखावज काट देने से किस प्रकार ध्वनि निकली होगी? पखावज को काटकर जब खडा किया गया होगा तो उसका नीचे के तलपर टिकाया हुआ हिस्सा खुला रहा होंगा, जो की पाश्चात्य वाद्यों में आमरूप में दिखायी देता हैं।

अल्लाउद्दीन खिलजी के (1290–1320) कालीन अमीर खुसरो को तबले का जनक कहाँ जाता है, लेकिन 18 वी शताब्दी में 500 साल के बाद यह वाद्य सिद्धार खाँ द्वारा प्रचार में क्यों आया? इतने साल तक यह कौन से स्थिती में था? ऐसे कई सवाल आज भी उठते है। सन 1719 ई. में दिल्ली के शहंशाह बादशहा मोहम्मद शाह रंगीले थे (शासनकाल सन 1719 से 1748) उनके दरबार में अनेक संगीतकार हुए। उस समय ही ध्रुपद–धमार गायकी के स्थान पर ख्याल गायन, ठुमरी, दादरा, कव्वाली जैसी गायन शैलियों का निर्माण हुआ तथा वीणा के स्थान पर सितार जैसी तंतुवाद्य का प्रचार एवं प्रसार हुआ। ख्याल गायन, ठुमरी आदि शैलियों तथा सितार के साथ–संगत के लिए पखावज की गंभीर ध्वनि उपयुक्त न थी। इस प्रकार अभिजात संगीत में तबले वाद्य का प्रवेश हुआ।

"भारतीय उत्पत्ति के सिद्धांतो को मानने वाले तबले का मूल भारत में मानते हैं और ये मानते हैं कि, हाथ में लेकर बजाएँ जानेवाला ताल वाद्य पुष्कर से इसकी

उत्पत्ति हुई है। ताल और तालवाद्य का वर्णन वैदिक साहित्य से ही मिलता है। दो या तीन अंगो वाले डोरियों के सहारे

लटकाकर हाथो से बजाएँ जाने वाले वाद्ययंत्र 'पुष्कर' या 'पुष्क' करके 5 वी

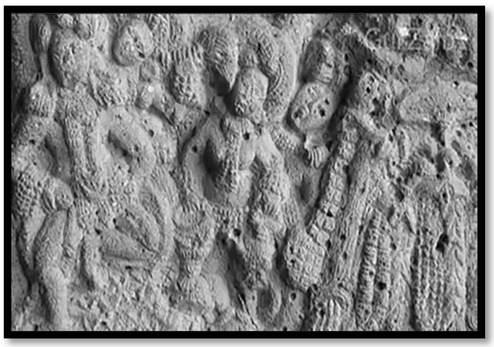

सदी में होने के प्रमाण मिलते हैं जो मृदंग के साथ अन्य ताल वाद्यो में गिने जाते थे हालाकी, तब इन्हे तबला नही कहाँ जाता

था। 5 वी सदी से पहले की अंजठा गुफाओं के चित्र जमिन पर रख कर बजाएँ जानेवाले ड्रमो को दिखाते हैं। बैठकर तालवाद्य बजाते हुए चित्र एलोरा गुफाओं में मिलते है, लेकिन यह कहना मुश्किल है की यह ड्रम तबला ही है या और कुछ और"।[1]

तबला कई सालों से, भारत में लगभग सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी के समय से मौजूद हैं ऐसा कहाँ जाता है, लेकिन उसके पहले यह वाद्य कहाँ था? इस वाद्य को तबला नाम कैसे प्राप्त हुआ? इस बारे में कोई भी ठोस जानकारी नही मिल पायी हैं। भारत में प्राचीन काल से ही तबला या तबला सदृश्य वाद्यो का अस्तित्व होने के बहुत से प्रमाण कई विद्वानोंद्वारा दिए गए हैं, इस वजह से तबले की निर्मिती का मान किसे दिया जाए? या तबले कि निर्मिती का कौनसा समय निश्चित रूप से मान लिया जाना चाहिए? ये दो सवाल आज भी उपस्थित होते हुए

दिखायी देते हैं। तबला वाद्य 'तब्ल' इस अरबी वाद्य से निर्माण हुआ होगा। 'इब्न खुर्दाद बिह' इस इतिहासकार के कथनानुसार तबला वाद्य के निर्माण का श्रेय 'तबल् बी लमक' इस अरबी कलाकार को जाता हैं। यह वाद्य मुघलों द्वारा भारत में आया। ख्याल और टप्पा जैसी रचनाओं के साथ संगत के लिए तबला वाद्य का उपयोग किया गया। तबला वाद्य में एक महत्वपूर्ण सुधार यानी मृदंग–पखावज के रूप में 'स्याही' का उपयोग किया गया। इसका श्रेय अमीर खुसरो को दिया जाता हैं।

डॉ. एस. आर. चिश्ती 'तबला संगतकार एवं कलाकार' इस ग्रंथ में 'तबला' शब्द के बारे में लिखते है कि, ''तबला तीन शब्दो से मिलकर बना है, जिसमें 'त' मतलब 'ताल' है, 'ब' मतलब 'बल' है और 'ल' मतलब 'लय' है। अर्थात, जिसमें 'ताल', 'बल' और 'लय' ये तीन चीजे सम्मिलित हो वही तबला है।''[2] तबला वाद्य के उत्पत्ति के संदर्भ में आजतक कई विद्वान और बुजुर्ग कलाकारों द्वारा अनेक संशोधन किए हुए दिखाई देते हैं। कई ग्रन्थकारो ने इसका उल्लेख अपनी–अपनी ग्रंथों में किया हुआ है जैसे – डॉ. योगमाया शुक्ल, डॉ. आबान मिस्त्रि, पं. अरविंद मुळगांवकर आदि। लेकिन तबले का उद्‌गम या उत्पत्ति के बारे में आजतक कोई ठोस या सटीक जानकारी नही मिल पायी हैं। तबला वाद्य के उद्‌गम के बारे में अनेक प्रचलित मत एवं किवदंतियाँ है उनमें से कुछ की चर्चा आगे की हुई हैं।

1.1.1. तबला वाद्य की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों के विचार:

1. ''तबला वाद्य का निर्माण करने में अमीर खुसरो का अधिक श्रेय है ऐसा माना जाता है, लेकिन पं. अरविंद मुळगावंकर अपने 'तबला' ग्रंथ में लिखते हैं कि, केवल नामसाधर्म्य की वजह से ही तबले का जनकत्व खुसरो खाँ की जगह अमीर खुसरो के पास चला गया है'' ।[3]
2. ''आमिर खुसरो (सन 1275 से 1325 ई.) ने तबले का आविष्कार किया। इसका कारण मात्र यह था की सन 1855 ई.में हकीम मोहम्मद करम इमाम द्वारा उर्दू भाषा में लिखी गई पुस्तक 'मअनद–उल–मूसिकी' में तबले के अविष्कारक का नाम आमिर खुसरो लिखा हुआ हैं।[4]
3. ''13 शताब्दी के पूर्व भारत में तबले का अस्तित्व था, ऐसा महम्मद करम इमाम में भी लिखा है। उनके अनुसार सुल्तान गयासउद्दीन बलबन के दरबारी

कलाकारो की संगत के लिए जो ताल वाद्य प्रयुक्त होता था, वह आज भी तबले बायें की जोडी से बहुत साम्य रखता था। अंतर केवल इतना था की उनपर स्याही नहीं लगती थी'' ।[5]

4. ''प्राचीन काल में अरेबिया में 'तबला' और 'नक्कारा' जैसे वाद्य, सैनिकों को युद्ध में प्रोत्साहित करने के हेतू प्रयुक्त थे। घोडे या ऊँट की पीठ पर रख करके वह लकडी से बजाया जाता था, जिसे "तब्लजंग" कहा जाता था। अरब देशों में आज भी "तब्लजंग" प्रसिद्ध वाद्य है, जो कमर पर बांधकर या ऊँट की पीठपर रखकर लकडी से बजाया जाता हैं। कुछ लोगों की धारणा हैं की इसी "तब्लजंग" से तबला बना है। अतः तबला विदेशी वाद्य हैं और यवनों के साथ भारत आया हैं'' ।[6]

5. ''कुदऊसिंह के गुरू भवानीदीन ने दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह रंगीले को तीन लाख परनें सुनाकर प्रसन्न किया था। आचार्य बृहस्पति जी ने भी भवानीदीन को मोहम्मदशाह रंगीले के दरबारी कलाकार के रूप में उल्लेख किया है। यदी भवानीदीन और सिद्धार खाँ समकालीन थे तो सिद्धार खाँ का काल मोहम्मदशाह रंगीले के समय ही होना चाहीए जो सन 1716 से 1748 ई. का है। वैसे भी धृपद गायकी की लोकप्रियता 18 वी शताब्दी के आरंभ तक बनी रही, ऐसा विविध इतिहासकारों का सर्वानुमत प्राप्त होता है। अतः तबले का विकास 18 वी शताब्दी के आरंभ के बाद ही हुआ होगा यह निष्कर्ष अधिक तर्कसंगत लगता हैं'' ।[7]

6. ''पं. उमेश मोघे 'देहली का तबला' इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि ''तबला यह 300–400 साल पुराना साज नही, बल्कि मृदंग की तरह नाटयशास्त्र के काल का साज है'' ।[8]

7. ''कार्ला (लोनावळा, महाराष्ट्र) की 'भाजे' नामक गुफा में पाए जानेवाले एक भित्ति–शिल्प का प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसमें एक स्त्री को तबले जैसे दो बर्तनो का वाद्य बजाते हुए दर्शाया गया है। यह भित्ति–शिल्प सभंवतः 2000 वर्ष पुराना है'' ।[9]

8. कुछ विद्वानों का कहना है कि, महाराष्ट्र के 'संबल', 'चौघडा' (छोटा नगाडा) और उत्तर हिंदुस्थान तथा पंजाब का दुक्कड आदि वाद्य दो बर्तनोंवाले थे।

इनमें से दुक्कड वाद्य हाथ से बजाया जाता था। यह वाद्य हो सकता है की लोक–संगीत और सुगम–संगीत के लिए इस्तेमाल किया जाता होगा।

9. ''दुक्कड जैसे दो बर्तनोंवाले अन्य वाद्यों का कलाकारों ने अपनी आजीविका के लिए उपयोग किया होगा, उसके लिए उन्होंने पखावज की तालीम भी ली होगी। संभवतः ऐसा भी हुआ होगा की पखावज बजानेवाले कलाकारोंपर अपने गुजारे के लिए दुक्कड जैसे दो बर्तनोंवाले वाद्य बजाने की नौबत आ गई होंगी। किन्तु एक बात निश्चित है की पखावज वादक कुछ काल तक दुक्कड जैसा वाद्य भी बजाया करते होंगे'' ।[10]

10. कुछ विद्वान तबले का जन्म पंजाब से मानते हैं। इनके अनुसार तबले का जन्म मृदंग के आधार पर लाला भवानीदास द्वारा किया गया है क्योंकि, पंजाब में बाँए पर आटा लगाने की प्रथा है, जो मृदंग से संबंधित प्रतित होती है।

11. ''भरत कालीन दर्दर वाद्य का नाम, बोलीभाषा में 'दरदर' से दर और दर से 'धार' हुआ होगा और यह वाद्य वादक 'धारी' नाम से प्रसिद्ध हुए होंगे" ।[11]

12. पं. सुधीर माईणकर 'तबला कला और शास्त्र' इस ग्रन्थ में तबला वाद्य के अविष्कार के बारे में लिखते है कि, ''तबले का जन्म या अविष्कार के सम्बन्ध में कहाँ जाता है कि खुसरो खाँ अथवा अमीर खुसरो ने तबले को जन्म दिया है, तो कोई यह मानता है कि, पखावज को बीच से किसी ने काट दिया 'तब भी बोला' से 'तब्बोला' और 'तब्बोला' से 'तबला' नाम से यह प्रचलित हुआ, तो किसी के मुताबिक तबला अरब देश से आया हुआ है। किसी की यह मान्यता है कि इसके जन्मदाता सिध्दर खाँ ढाढी है, तो कोई यह मानता है कि खब्बे हुसेन ढोलकिया ने तबले को जन्म दिया है। इसी तरह इस सम्बन्ध में अनेक मत–मतातंर दिखाई देते हैं'' ।[12] इस बात से पता चलता है की तबलावाद्य का निर्माण किसी एक विशेष व्यक्ति द्वारा या किसी कालखण्ड में नही हुआ है।

13. डॉ. सुदर्शन राम अपने 'तबले के घराने वादन शैलियाँ एवं बंदिशे' इस ग्रंथ में लिखते है कि," 13 वीं शताब्दी के अल्लाउद्दीन खिलजी कालीन अमीर खुसरों ही इस वाद्य के जन्मदाता है, तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि लगभग 13 वीं शताब्दी से 17 वी शताब्दी के बीच निर्मित प्रस्तर शिल्पों

या चित्रों में इस वाद्य का अंकन क्यों नही मिलती। 18 वी शताब्दी में सिधार खाँ, या सुधार खाँ द्वारा यह 500 वर्ष बाद प्रचार में क्यों आया। इतने काल तक इस वाद्य की क्या स्थिती रही"।[13]

14. ''सुप्रसिद्ध संगीताचार्य ठाकुर जयदेव सिंह तबले को प्राचीन भारतीय लोक वाद्य का परिष्कृत रूप और तबला शब्द को 'तब्ल' का अपभ्रंश मानते हैं। उनके अनुसार तबला अपने अपरिष्कृत रूप में प्राचीन काल से ही भारत में था, किन्तु 18 वीं शताब्दी तक न तो उसे आज की तबला जोडी जैसा रूप प्राप्त हुआ था और नाही वह अधिक प्रचार में था। यहीं कारण है कि मोहम्मद शाह रंगीले के युग तक हम तबले की चर्चा कहीं नहीं पाते।''[14]

15. पं. जमूना प्रसाद पटेल अपनी 'तबला–वादन की विस्तारशील रचनाएँ' इस किताब में लिखते हैं कि,''दिल्ली में सिध्दार खाँ के साथ एक प्रतियोगिता हुई थी, जिसमें मृदंग वादक ने उन्हें परास्त कर दिया था। लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी और बाएँ अर्थात डग्गे के ऊपर लगे आटे का लेप हटाकर दाहिने की भाँति लोहे के चूर्ण का मसाला रखवाया और ढोलक के समस्त बोलों का सर्वत्र स्वागत हुआ। इसके पूर्व तक तबला, मृदंग की भाँति खुले हाथों से बजाया जाता था, किन्तु बाएँ में स्याही लगने से उसमें बंद बोल भी बजने लगे। इन बंद बोलो का वादन सिध्दार खाँ ने चलाया। आगे चलकर इसी बंद बोलो के बाज को दिल्ली बाज के नाम से पुकारा जाने लगा।''[15]

16. तबला वाद्य के उत्पत्ति के बारे में पं. सुरेश तळवलकर अपनी मराठी अनुवादित 'आवर्तन' इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि,''भारत सोडल्यास इतरत्र कोणत्याही संस्कृतीत वा देशात चर्मावाद्यावर शाईच्या लेपनाचा उल्लेख किंवा पुरावा सापडत नाही. अस असताना उगाच तबला या वाद्याचं मुळ इराण, पर्शिया यांसारख्या मध्य पूर्वेकडील देशांशी किंवा संस्कृतीशी जोडण्यात काय अर्थ आहे? बरं, आजच्या काळात इराण किंवा मध्य पूर्वेकडील देशात तबला सदृश्य काही वाद्यं वाजत आहेत का, तर तसही दिसत नाही, तबला वाद्याच्या नावाशी केवळ काही साधर्म्य सांगणाऱ्या वाद्याच्या जोरावर (तबलजंग तबल–वबलावी, तबलमिर्गी इ.) तबलावाद्याच्या उत्पत्तीचं सर्व श्रेयच या परकीय संस्कृतीना देण्यात मला काही राम नाही.''[16]

अतः विभिन्न तबला वादको व ग्रंथकारों के विचार जानने के पश्चात शोधार्थी को ऐसा प्रतीत होता है कि, तबला वाद्य का निर्माण न तो पखावज को बीच में से काटकर दो भागों में करने से हुआ है, न ही 13 वी शताब्दी में अल्लाउद्दीन खिलजी कालीन अमीर खुसरो अथवा खुसरो खाँ ने तबले का निर्माण किया है, न ही यह वाद्य अरब देश से आया हुआ है। आधुनिक संगीत जगत का सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय वाद्य 'तबला' सिर्फ प्राचीन अवनध्द् वाद्य पुष्कर के 'ऊर्ध्वक' व 'आलिंग्य' का ही नवीनतम और विकसित रूप है। त्रिपुष्कर के तीन अंग व चार मुखों में से कालान्तर में स्वतंत्र रूप से अंकिक का पखावज (मृदंग) के रूप में और ऊर्ध्वक व अलिंग्य का तबले के रूप में विकास हुआ, जो बदलते समय और बदलते संगीत के परिणामगत आज इस रूप में स्थापित है। इस वाद्य की उत्पत्ती ख्याल गायन के साथ संगत करने के हेतु से हुई और इस वाद्य में परिवर्तन करके उसके वादन विधि में सुधार करने में तथा उसका प्रचार व प्रसार करने का श्रेय उस्ताद सिद्धार खाँ को जाता हैं। उस्ताद सिद्धार खाँ ने दिल्ली घराने की नींव डाली, जो आज तबले के आद्य घराने के नाम से परिचित है।

1.1.2. तबले की बनावट :

तबला वाद्य का उपयोग उत्तर भारतीय संगीत में साथसंगत और स्वतंत्र

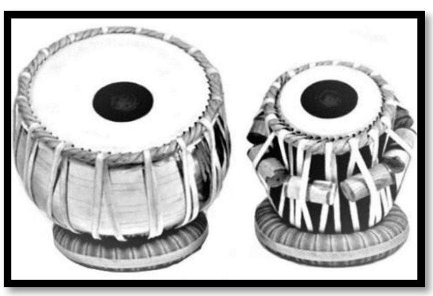

वादन के लिए एक अवनद्ध वाद्य के रूप में किया जाता है। तबला यह वाद्य तबला व डग्गा इन दो भागों से बना हुआ हैं। तबला दाहिने हाथ से बजाया जाता है इसलिए इसे 'दायाँ' कहते हैं। तबले के साथ जो दूसरा भाग होता उसे 'डग्गा' कहते हैं, जो बाँये हाथ से बजाया जाता है इसलिए इसे 'बायाँ' कहते हैं। खड्ज ध्वनि निकालने के लिए बायाँ का उपयोग किया जाता है। तबला खैर, शिसव, बबूल, चिंच आदि लकडी से बना हुआ होता है। तबले का खोड, लकडी का होता है जिसका मुख 5 इंच से लेकर 7¼ इंच तक का होता है तथा इसका उर्ध्व भाग मोटा और नीचेवाला भाग गोलाकार होता है। तबले की उँचाई 9 इंच से लेकर 11 इंच तक होती है। तबले के मुख पर बकरी या भेड के

खाल से तैयार की गई पुडी की दो परते होती है। पुडी के बीचोबीच गोलाकार रूप में लौह चूर्ण से तैयार किया हुआ मसाला लगा हुआ होता है, जिसको 'स्याही' कहते हैं। तबले को विशिष्ट स्वर में मिलाते हैं, यह स्वर तबले के तनेपे जहाँपर चमडा चढाया है उसका माप व तबले पर लगाई गई स्याही इसपर निर्भर होता है। तबले के तने का मुँह अगर छोटा हो तो स्वर टीप का होता है और तने का मुँह जादा बडा हो तो स्वर उतना ही चौडा तथा लंबा होता है इस प्रकार तार षड्ज से लेकर मंद्र षड्ज तक सभी स्वरोंको तबले पर निकालना संभव हो पाया हैं। तबले के साथ जो दूसरा भाग होता है, उसे डग्गा या बायाँ कहते हैं। डग्गा जिसे बाएँ हाथ से बजाते हैं और यह घुमटाकार होता है तथा धातु के बरतन का बनाया जाता है। इसका ढाँचा पीतल, लोहा, धातु या मिट्टी से बनाया हुआ होता हैं। डग्गे की ऊँचाई लगभग 8 से 10 इंच की होती है तथा मुख 7 से 9 इंच तक का होता है। डग्गे की घुमटाकार आकार की वजह से बायाँ में मंद्र स्वर निकालना संभव हो पाया है। पखावज की तुलना में तबला वाद्य में यह महत्वपूर्ण सुधार हुआ की बायाँ पर स्थाई स्वरूप से स्याही का उपयोग किया गया। आगे चलकर अवनद्ध वाद्यों के मुखचर्म पर लेपन के लिए तेरहवी शताब्दी में पं. शार्ङ्गदेव के समय तक काली मिट्टी के स्थान पर राख, चावल, व गुड का मिश्रण प्रयोग किया जाने लगा था और सोलहवी शताब्दीतक उसमें जले हुए लौहचूर्ण का भी व्यवहार किया जाने लगा था'' ।[17] तबला वाद्य पर शुरुआती के समय पखावज की तरह गेहूँ के आंटे का उपयोग किया जाता था, बाद में इसमें लौहचूर्ण के मसाले से बनी स्याही का उपयोग किया गया। ''स्व. डॉ. लालमणी मिश्र के अनुसार बाएँ तबले में गेहूँ के गीले आँटे की जगह स्याही का सर्वप्रथम प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में सिद्धार (सुधार) खाँ द्वारा किया गया।''[18] पहले डग्गे पर पखावज की तरह ही आटा लगाया जाता था, लेकिन जब डग्गे पर स्याही का उपयोग किया गया तो बायाँ में घुमारा, मिंडकाम, घुमक आदि ध्वनि निकालना संभव हो सका। तबला तथा डग्गा दोनों की पुडी को कसने के लिए सूत की बनाई डोरी या फिर चमडे की खाल निर्मित बध्दी का प्रयोग किया जाता है। अतः शोधार्थी ने यह पाया है कि, तबले की इस वैशिष्ट्यपूर्ण बनावट की वजह से अलग—अलग सुक्ष्म, मुलायम और जोरदार नाद निर्माण करना केवल तबले पर ही सभंव हो पाया है और तबले की विशिष्ट प्रकार की बनावट की कारण ख्याल जैसी रचना के साथ

साथसंगत के दृष्टिकोन से पखावज की तुलना में तबला वाद्य अधिक उपयुक्त साबित हुआ है।

1.1.2 तबला वाद्य का विकास :

उत्तर भारत में प्रचलित धृपद–धमार गायन शैली के साथ पखावज यह साज सर्वांगीण दृष्टिकोन से इन गायन प्रकारों के साथ संगत में काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा था, लेकिन धृपद–धमार गायन प्रकार के बाद जब 'ख्याल गायकी' का उद्‌गम हुआ और वह अधिक लोकप्रिय हो गयी, तब साथ संगत के लिए पखावज के अलावा किसी दूसरे अवनद्ध वाद्य की आवश्यकता महसूस हुई, जो ख्याल गायन को अपेक्षित साथसंगत कर सके और यह सारी कमी तबला इस वाद्य ने पूरी की। धृपद की तुलना में धीरगंभीर, लेकिन ख्याल गायन को आवश्यक पखावज का लंबा और चौडा स्वर रसहीन लगने लगा। धृपद–धमार के समय सितार वाद्य का भी प्रचलन काफी बढ गया था। तबला यह वाद्य पहले कमरे से लटकाकर बजाया जाता था। ख्याल गायन और सितार के साथ संगत करने में आसानी हो इसलिए तबला वाद्य को नीचे रखकर बैठकर बजाया जाने लगा। ख्याल गायन के लिए साथसंगत में पखावज के गंभीरयुक्त तथा खुले जोरदार बोल संगत में सौंदर्यता लाने में असफल रहे और इस वजह से संगत के लिए पखावज की जगह तबला वाद्य ने ले ली।

पहले कथक नृत्य को राजाश्रय मिला था तथा कथक नृत्य का भी विकास हो चुका था। कथक नृत्य के साथसंगत में पखावज का उपयोग होता था, किन्तू कथक नृत्य का तत्कार यह प्रकार, जो द्रुत लय में प्रस्तुत किया जाता है वह पखावज जैसे वाद्य पर बजाना तबला संगतकार को बहुत ही कठिन महसूस होने लगा, इस वजह से कथक नृत्य के साथ भी तबला वाद्य का उपयोग संगत के रूप में किया जाने लगा।

तबले की भाषा और उसका विकास एकही समयपर नहीं हुआ अपितु, तबला वाद्य का विकास धीरे–धीरे होता गया वैसे ही तबले की भाषा भी समृध्द होती गयी। तबले की भाषा को समृध्द करने के लिए तबले के दो प्रमुख बाज, तबले के घराने और स्वतंत्र वादन में पेशकार से लेकर लग्गी वादनतक बजनेवाली सभी रचनाओंकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, जो तबला वाद्य की बनावट की वजह से ही संभव

हो पाया है। तबले की भाषापर हिंदी भाषा का प्रभाव होने की वजह से हिंदी भाषा के 10 व्यंजन और 5 स्वरों का उपयोग तबले की भाषा के लिए किया गया हैं। इसमें मुख्य रूपसे सात वर्ण ही बनते हैं–'क, घ अथवा ग, त, द, न, ट, र।' तबले की भाषा में तालव्य, कण्ठव्य और दंत्य व्यंजनों का प्रयोग दिखाई देता हैं। ओष्ठव्य स्वरों को वर्ज्य माना गया हैं।

स्वतंत्र वादन करने के लिए तबले के किसी भाषा साहित्य का होना भी जरूरी था। तबले की जो प्राथमिक भाषा विकसित हुई है, उसका उद्गम पखावज की भाषा से निहीत था। धा, ता, धीं, दिं, तिट, तिरकिट, त्रक, धाती, क्डधा आदि महत्वपूर्ण अक्षर तबले पर पखावज से प्राप्त हुए। ''भगवतशरण शर्मा जी के अनुसार तबला वादकों ने पखावज या मृदंग पर बजने वाली बोलों में थोडा हेरफेर करके अपने पाटाक्षरों में से 'म' शब्द को बिल्कुल निकाल दिया। इसमें वादकोंने कहाँ की यदि दोनो ओष्ठों के बीच एक सुई खडी कर दी जाये और तबले का बोल पढते समय सुई न चुभे तब तबले के बोल शुद्ध माने जायेंगे इस आधार पर 'धुमकिट' बोल (धा) पर 'उ' की मात्रा ये दोनों तबले के विरूद्ध समझी गयी। तबला वादकोने अपने बोलों में नक्कारा, मृदंग, ढोलक और नृत्य इ. से बालों को लेकर इसको साहित्य में अद्भूत वृद्धि कर ली''[19] तबलावाद्य ने इन अक्षरों को बजाने का निकास विधी पखावज से कुछ अलग कर दिया। आरंभ में यह निकास केवल ख्याल गायन के अनुसार ही बदला। तबले के विकास के साथ–साथ उसके वादन शैली में भी वृद्धि होती गयी।

वर्तमान समय में तबला वाद्य साथसंगत के साथ–साथ स्वतंत्र वादन करने के लिए भी जाना जाता हैं और अत्यंत लोकप्रिय भी हो चुका हैं। पखावज से अलग तबले में अलग–अलग शैलियों का निर्माण होने के बाद तबले में निकास का अलग तंत्र निर्माण हुआ और स्वतंत्र तबला वादन की प्रस्तुति का प्रारंभ हुआ और इसी शैली को आज घराने के नाम से पहचाना जाता है। पं. सुरेश तळवलकर अपनी मराठी अनुवादित 'आवर्तन' इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि, "तबलावाद्याची जडनघडण, त्यांच प्रगत तंत्र, त्याची बहुपेडी समृध्द भाषा यातून तबलावाद्यानं लय–ताल क्रिया आणि कला सादरीकरणाची नवनवीन शिखरं पादांक्रात केली. भारतीय संगीतातील सर्व गायन–वादन–नृत्य प्रकारांना साथ करता करता आपल्या सर्व गुणवत्तेची आणि

बलस्थानांची प्रचिती तबलावाद्यांन दिली आहे. धृपद–धमारसारखी गंभीर ख्याला सारखी अमूर्त व तरल, ठुमरी व दादऱ्या सारखी भावस्पर्शी, किर्तन अभंगासारखी भक्ति रसप्रधान, भावगीत, गझल, सर्व प्रकारची तंतुवाद्य, सुशिरवाद्य यांपासून कथक, लावणी सारखे नृत्यप्रकार ते थेट दाक्षिणात्य वाद्यांबरोबर सहवादन आणि पाश्चिमात्य ताल वाद्यां बरोबरील Fusion संगीत या सर्वांना नुसती पुरकच नव्हे तर सूचक साथ करत तबला वाद्यानं आपलं 'एकमेवाद्वितीय अष्टपैलूत्व' हे संगीतक्षेत्राच्या इतिहासात, वर्तमानात आणि भविष्यात सुवर्णाक्षरांनी लिहून ठेवलं आहे.''[20]

अतः शोधार्थी को तबला वाद्य के विकास के बारे में लगता है कि, 'आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है'। तबला वाद्य की उत्पत्ति के बारे में मतभेद हो सकते हैं, इस तथ्य को कोई भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, फिर भी ख्याल गायन, वाद्यसंगीत, नृत्य आदि संगीत प्रकारों के लिए अन्य किसी भी चर्मवाद्य की तुलना में तबला वाद्य की आवश्यकता अधिक महसुस हुई और इसके पश्चात ही तबला वाद्य का सर्वांगीण विकास होना शुरू हुआ। प्रारंभिक के समय तबला वाद्य का उपयोग जो की साथसंगत के लिए ही किया जाता था, परन्तु कुछ ऐसे प्रतिभाशाली कलाकार हुए, जिन्होंने तबला वाद्य को साथसंगत के साथ स्वतंत्र वादन के रूप में भी आगे लाने के लिए प्रयास किया। कुछ प्रतिभावान कलाकारोंद्वारा तबला संगतकार को साथसंगत करते समय कुछ समय के लिए स्वतंत्र रूप से वादन प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया, जिस वजह से वादक का तबला वाद्य की तरफ साथसंगत के साथ ही स्वतंत्र वादन के रूप में भी देखने का रवैया बदलने लगा। इस कार्य को आगे बढाने में कई विद्वान कलाकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, जिसकी बदोलत आज तबला वाद्य हमें साथसंगत के साथ ही स्वतंत्र वादन के रूप में प्राप्त हुआ है।

1.1.4. पखावज और तबला वाद्य का तुलनात्मक अध्ययन :

पखावज शब्द 'पखवाज' का अपभ्रंश है, इसका अर्थ है पूरे बाजु के दम से बजाया जानेवाला। पखावज को तबले का जनकवाद्य कहाँ जाता हैं। पखावज को एक गंभीर प्रकृति का वाद्य भी माना जाता हैं। धृपद–धमार गायन शैली के साथ संगत के लिए पखावज का उपयोग किया जाता था। ध्रुपद गायकी का लोप होने

के पश्चात पखावज वादन का भी प्रचार धीरे–धीरे कम होता चला गया। जब ख्याल गायन का उदय हुआ तब ख्याल गायकी में केवल ठेका चाहिए था। उसवक्त पखावज ही साथसंगत का प्रमुख वाद्य था उस समय कथक नृत्य के साथ भी पखावज का उपयोग किया जाता था। पखावज को नृत्य के साथ संगत में पेट से बांधकर बजाया जाता था, जो बजाने के लिए काफी कठिन होता था अपितु, तबला वाद्य के उद्‌गम के पश्चात पखावज की जगह तबला वाद्य ने ले ली। तबले में खुले और बंद दोनों प्रकार के बोलों को बडी आसानी के साथ निकाला जा सकता था। अतः धीरे–धीरे तबला वादन का प्रचार और प्रसार बढता चला गया और पखावज वादन दिन प्रतिदिन कम होता गया। तबले के जो भी प्राथमिक वर्णाक्षर हैं तथा भाषा इनका विकास पखावज से ही हुआ। धा, दीं, तिट, किट, तिरकिट, क्डधे तिट जैसे अक्षर तबले को पखावज से ही प्राप्त हुए। तबले में इन वर्णा अक्षरोंका निकास आवश्यकता नुसार बदला गया। वर्तमान काल में तबला एवं पखवाज पर निकलने वाले कुछ वर्णाक्षर गुँजयुक्त तथा कुछ दबे रूप में बजाएँ जाते हैं। इन बोलों को खुले बोल एवं बन्द बोल कहाँ जाता हैं तथा इसे खुला बाज एवं बंद बाज भी कहाँ जाता हैं।

डॉ. एस. आर. चिश्ति अपनी 'तबला संचयन' इस ग्रंथ में तबला और पखावज वाद्य के बारे में लिखते हैं कि, ''सन 1665 ई. के आस–पास जब पं. अहोबल ने अपने ग्रंथ 'संगीत पारिजात' की रचना की तो उन्होंने मर्दल को मर्दल न कहकर 'मृदंग' ही कहाँ और उसका वर्णन आधुनिक 'पखावज' के समान ही किया। उनके अनुसार मृदंग को लाल चन्दन, लोहे अथवा लकडी से बनाया जाता था। इसके ऊपर गट्टें लगाये जाते थे और सीधे मुख पर लोह चूर्ण लगाया जाता था तथा बाँये पर गुँथा हुआ आटा। अब उत्तर भारत के ब्रज क्षेत्र में इसे 'पखावज' और बंगाल में मृदंग कहने लगे।''[21]

अतः शोधार्थी को लगता है कि, तबला यह वाद्य अपनी बनावट की वजह से उसके दो भाग व उर्ध्वमुखी तथा ऊँचाई कम होने से पखावज की अपेक्षा तबले पर वादन करना अधिक सुविधाजनक रहता है। तबला उर्ध्वमुखी वाद्य होने की वजह से इसे खडा करके बजाया जाता है इस कारण तबले पर वादन करना पखावज की तुलना अधिक सरल होता है तथा उसमें जादा जोरदारी व द्रुत गति से भी वादन

करना सम्भव होता हैं, जबकी पखावज इसके विपरीत लिटाकर बजाया जाता है। तबला वाद्य की उँचाई सीमीत तथा उर्ध्वमुखी होने के कारण इस पर विभिन्न लयकारी एवं तैयारी के साथ वादन करना पखावज की तुलना में सरल रहा हैं। पखावज की तुलना में स्वतंत्र तबला वादन प्रस्तुति अधिक होने की वजह से तबला इस वाद्य का प्रचार एवं प्रसार अधिक हुआ है और तबले का महत्व दिन ब दिन बढता जा रहा है। पखावज से अलग तबले ने अपना निजी साहित्य भी विकसित किया है जैसे–पेशकार, कायदा, रौ, गत आदि।

शोधार्थी का मानना है कि, पखावज के बाएँ पर बजाने के लिए पूरे हाथ के पंजे का उपयोग किया जाता है इस वजह से दाएँ हाथ की तैयारी की तुलना में बाएँ हाथ को उतनी तैयारी के साथ शीघ्र गती से चलाना कठिन होता है, किन्तु तबले के दाएँ तथा बाएँ दोनों मुखों पर दोनों हाथो की उंगलियों की सहायता से बजाया जाता हैं जिस कारण पखावज की तुलना में तबले पर द्रुतलय में बजाना काफी सरल हुआ है। पखावज की तुलना में तबले पर आसंदार खुले तथा बिना आसदार मृदु एवं दोनों प्रकार के नादध्वनि निर्माण करने की क्षमता होने की वजह से अधिक मिठास उत्पन्न होती हैं। तबला वाद्य उर्ध्वमुखी है जिसकी वजह से इसकी उँचाई सीमित होती है जिस कारण तबले पर विभिन्न लयकारियों का उपयोग करके तैयारी के साथ वादन करने में सहायता मिलती है। खुले तथा बंद दोनों प्रकार के बोलों कों तबले में निकालने की सुविधा होने की वजह से धृपद–धमार जैसी गंभीर प्रकृति की गायन के साथ, ख्याल गायन एवं सुगम संगीत के साथसंगत करने में तबला वाद्य पखावज की तुलना में काफी सक्षम रहा।

शोधार्थी को ऐसा दृष्टिगोचर होता हैं कि, तबला वाद्य पखावज की तुलना में काफी लोकप्रिय तथा स्वतंत्र वादन एवं साथसंगत की दृष्टिकोनसे उपयुक्त होने की वजह तबला वाद्य का बाज व बनावट दोनो रहा हैं। पखावज पूरे हथेली से बजने के कारण तबला वाद्य की तुलना में पखावज उतना द्रुत लय में नहीं बज पाता है। पखावज तबले से काफी बडा वाद्य हैं तथा बाएँ मुख पर गीले आटें का प्रयोग किया जाता है जिस कारण बाएँ मुख पर हथेली के निचले भाग से घुमक निकालना सम्भव नहीं हो पाता। तबले का बाएँ भाग डग्गे पर स्याही लगी होने के कारण उँगलिया तथा हथेली दोनों का प्रयोग होता हैं इसलिए तबले के बाएँ के मुख पर

घुमक निकालना संभव हो पाया है। पखावज के बाएँ पर पुरे पंजे से वादन किया जाता है, जिस कारण दाएँ हाथ से जो बोल तैयारी के साथ बजते हैं, उतने ही बाएँ के मुख पर शीघ्र गति से हाथ चलाना कठिन हो जाता है, किन्तु तबले के साथ यह समस्या निर्माण नहीं होती हैं। तबले में दायाँ और बायाँ दोनों पर दोनों हाथो की उँगलिया शिघ्रता से चलने के कारण तबला पखावज की तुलना में अधिक असरदार एवं उपयोगी साबित हुआ है। पखावज वादन में पूर्वसंकल्पित रचनाओंका वादन अधिक किया जाता हैं और तबले में विस्तारक्षम रचना और पूर्वसंकल्पित रचना इन दोनों रचनाओं की वादन विशेषता की बदौलत आज तबला यह साज पखावज से बहुत आगे निकल चुँका है।

अतः वर्तमान में तबला वादन के साहित्य में काफी वृद्धि हुई है। तबला वाद्य आज इतना विकसित हुआ है कि, इसको सीखने के लिए आज अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तबले के एकल वादन की वजह से भी इस वाद्य का प्रचार पखावज की तुलना में अधिक हो रहा है जिस वजह से तबले का महत्व दिन ब दिन बढता जा रहा है।

1.1.5. खड्ज और तार ध्वनि :

तबला वादन में खड्ज और तारध्वनि को अत्यंत महत्व दिया जाता हैं। सभी तालवाद्यों में खड्ज और तार ध्वनि का निर्माण होता ही हैं। खड्ज और तार ध्वनि के निर्माण से ही आज पाश्चात्य वाद्य ड्रमसेट से लेकर पखावज, तबला, नकारा, ढोलकी, दिमडी आदि वाद्यों की भाषा निर्माण हुई हैं और इनका वादन सदियों से होता आ रहा है। पखावज, तबला इन वाद्यों के दाएँ से तारध्वनि का निर्माण होता हैं और बायाँ से खड्ज ध्वनि निर्माण होता हैं। खड्ज मतलब है गंभीर स्वर और तार ध्वनि का मतलब उच्च कंपन स्वर। इन दोनो प्रकार की ध्वनियों का उपयोग तबला व डग्गा इन दो भागों पर कुछ कम या जादा प्रमाणतक निकाला जाता हैं।

1.2. अवनद्ध वाद्य :

अवनद्ध वाद्य का मतलब है कि, जिस वाद्य के मुख पर चमढे की जगह खाल का प्रयोग किया जाता है और वह खाल से मढा हुआ रहता है तथा बजाने के लिए हाथो का या किसी लकडी के सहायता से आघात करके उससे स्वर निर्मिति की जाती है उसे 'अवनद्ध वाद्य' कहते हैं। अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में तबला,

पखवाज, मृदंग, ढोल, ढोलक, डमरू, नकारा, खोल आदि वाद्य आते हैं। अवनद्ध वाद्य को तैयार करने के लिए किसी खोखले वस्तुपर चमडे को रख कर कसा जाता था। इस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों को तैयार करने के लिए जानवर का चमडा विशेष रूप से कमाया हुआ होता हैं। उस वस्तु के ढाँचे के मुखों पर मढना, कसना पडता हैं और उसके पश्चात लेप का प्रयोग किया जाता है और यह सब वैदिक युग से चला आ रहा है। अवनद्ध वाद्य की मुल प्रेरणा जमीन में गड्ढा खोदकर उसपर आघात द्वारा हुई। शुरुआत के समय में इसे पेड की छाल द्वारा ढका गया। बाद में छाल की जगह जानवरों की खाल का प्रयोग किया गया। अवनद्य वाद्यों में भूमि दुंदुभि वाद्य को एक प्राचीन अवनद्ध के रूप में जाना जाता है। डॉ. हेमा दानी 'अवनद्ध वाद्य का प्राचीन प्राकृतिक रूप एवं महत्व' में लिखती है की ''मरे हुए जानवर की खाल को सूखने के लिए पेड की डाल पर, या किडे द्वारा खोखले किए गये पेड के तने के टुकडे पर डाल दिया गया होगा। सुखने पर हवा से हिलकर पेड के टहनी जब उस सुखी खाल पर आघात करने लगी, तो उससे उसे विचित्र ध्वनि सुनाई दी। उस मानव ने उस खाल को जमीन पर फैलाकर आघात किया, तो उसे ध्वनी नहीं सुनाई पडी। उसने अनुभव किया की खाल की पिछली और कोई वस्तु यदि खाल से सटी हुई नहीं हो, तो आवाज आती है। उसने भूमि में गढ्ढा खोदकर खाल उसके उपर खींचकर तान दी, आघात किया और ध्वनि आने लगी। इस प्रकार भूमि दुन्दुभि का जन्म हुआ तथा भूमि दुन्दुभि के प्रारम्भिक रूप ने ही आगे चलकर चर्म से मढे हुए अर्ध्द विकसित वाद्य को जन्म दिया।''[22]

दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, मृदंग, ढोल जैसे अनेक अवनद्ध वाद्य का प्रयोग बहुत ही प्राचीन काल से होता हुआ चला आ रहा हैं। दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, मृदंग और डमरू इन वाद्यों को अवनद्ध वाद्यों का जनक कहाँ गया हैं। अवनद्ध वाद्यों का उपयोग प्राचीन काल से ही संगीत में होता आ रहा हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक इन अवनद्ध वाद्यों में बहुत बदलाव हुए हैं। प्राचीन काल में आदिमानव दोनों हाथों से ताली बजाते थे और हाथों को अपने शरीर पर मारकर ध्वनि निर्माण करते थे। जब वो शिकार करने के लिए जाते थे तब पत्थर के दो टुकडों को आपस में टकराकर भिन्न–भिन्न ध्वनियों का निर्माण करते थे, ऐसा करने से उन्हें आनंद मिलता था। नाटयशास्त्र व संगीत रत्नाकर काल के बाद इन

अवनद्ध वाद्यों में कई बदलाव हुए। अवनद्ध वाद्यों में स्याही के रूप में लोहचूर्ण का प्रयोग किया गया जिसकी वजह से अवनद्ध वाद्यों में काफी सुधार हुआ जिस वजह से एक ही वाद्य पर आवश्यकता नुसार विभिन्न स्वरों का निर्माण करना आसान हुआ। प्राचीन काल में मृदंग बनाने के लिए मिट्टी का प्रयोग किया जाता था, इस पर गठ्ठे का उपयोग नहीं किया जाता था वो बाद में किया गया। अवनद्ध वाद्य का उपयोग लय–ताल दिखाने के लिए किया जाता हैं, तो लय दिखाने के लिए घनवाद्य का उपयोग किया जाता हैं। घनवाद्यों में खंजरी, झाँझ, डमरू आदि वाद्य आते हैं। कुछ ताल वाद्य लय के साथ ही थोडे बहुत प्रस्तारयुक्त भी होते हैं। इसलिए सबसे ऊँची श्रेणी में तबला और पखावज का स्थान आता हैं, क्योंकि इनके शास्त्र का विकास स्वर शास्त्र की तरह ही हुआ हैं। जिस प्रकार गायन में स्वरों का विस्तार होता हैं, उसी प्रकार इन वाद्यों में भी विभिन्न तालों का विस्तार कायदा, रेला, परण, गत, मुखडा आदि द्वारा किया जाता हैं।

भूमिदुन्दुभी या दुन्दुभी जैसे प्राचीन अवनद्ध वाद्यों में किसी भी प्रकार के विलेपन की सुविधा नहीं होती थी। जमीन में गड्ढा खोदकर उसके उपर किसी मरे हुये जानवर की खाल को मढा जाता था और उसपर किसी पशु की पूँछ या लकडी के द्वारा आघात करके ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। इन वाद्यों का उपयोग सामुहिक रूप से सांगीतिक उत्सवों के लिए किया जाता था, किन्तु पशु की पूँछ या लकडी की सहायता से इन वाद्यों को बजाने की वजह से इसमें अलग–अलग वर्णों का वादन सम्भव नहीं था। इसके लिए इन वाद्यों में से गुँज का निर्माण होना आवश्यक था इसलिए इन पर विलेपन का प्रयोग किया गया। भरत 'नाटयशास्त्र' में सर्वप्रथम अवनद्ध वाद्यों के मुख पर विलेपन की प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है। उसके बाद लेपन क्रिया का प्रयोग विविध अवनद्ध वाद्यों पर स्याही के रूप में किया गया। इस विलेपन क्रिया के लिए काली चिकनी मिट्टी का उपयोग किया जाता था। मध्यकाल में यह सुधार गेहूँ तथा जौ के आँटे तक पहुँचा और आज तबला, मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों ने उसे स्याही के रूप में अपनाया हैं।

वर्तमान में शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम, फिल्मसंगीत तथा नृत्य के साथ तबला, ढोलक, नाल आदि अवनद्ध वाद्यों का उपयोग होता हुआ दिखाई देता हैं। आज गायन, वादन, नृत्य के साथ सुन्दरता बढाने के लिए अवनद्ध वाद्यों

को जितनी सफलता प्राप्त हुई हैं उतनी सफलता किसी अन्य अवनद्ध वाद्यों को नहीं हुई।

आगे कुछ प्रचलित अवनद्ध वाद्यों के बारे में सचित्र जानकारी के साथ चर्चा की गई है।

1.2.1. भूमिदुन्दुभी एवं दुन्दुभि :

वैदिक काल से ही 'दुंदुभी' एक महत्वपूर्व वाद्य रहा है। इसका वादन युद्ध, विजय, देवउपासना व मांगलिक अवसरों पर किया जाता था। भरत कृत नाटयशास्त्र में 33 वे अध्याय दुंन्दुभी का उल्लेख मिलता हैं। पुराणों तथा संस्कृत साहित्य में देवताओं द्वारा दुदुंभि वादन का वर्णन मिलता हैं। "संगीतरत्नाकर के अनुसार, "आम वृक्ष की लकडी से बडे आकार तथा जोरदार ध्वनि वाले, जिसके भीतर काँसा लगा हो जो वलयहीन, मुँह पर चर्म से मढा, बद्धियों से बँधा व कस कर खिंचा हुआ हो। मजबुत चमडे से बने कोण (चोब) से बजाए जाने वाले इस 'दुंदुभि' वाद्य से मेघगर्जन के समान घोंकार निकलती हैं। इसे मंगल और विजय के अवसर पर तथा देव मंदिरों में बजाया जाता हैं"।[23]

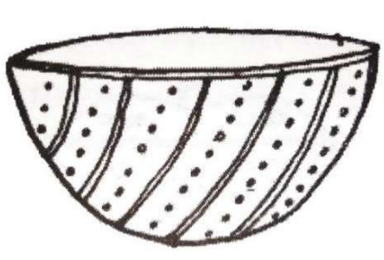
दुन्दुभी

दुन्दुभीवाद्य का उपयोग त्रिपुष्कर वाद्य के निर्माण से भी बहुत पहले किया जाता था। भूमिदुन्दुभी वाद्य के बारे में कहाँ जाता है कि, जमीन में गड्ढा खोदने के पश्चात उसके उपर एक बडे चमढे को रस्सियों द्वारा तानकर बांधा जाता था, फिर खुटियों की सहायता से तनाव दिया जाता था, इसे बजाने के लिए लकडी की सहायता से पीट–पीटकर बजाया जाता था।

1.2.2. त्रिपुष्कर वाद्य (आलिंग्यक, उर्ध्वक, आंकिक) :

भारतीय संगीत का प्राचीन आधार ग्रंथ 'नाटयशास्त्र' के रचयिता भरतमुनि के युग में त्रिपुष्कर सर्वप्रमुख अवनद्ध वाद्य था जिसके अविष्कार की प्रेरणा स्वाति मुनि को वर्षा ऋतु में पुष्कर तालाब के कमलपत्रों पर गिरती हुई जल की बूँदों से 'पट पट' शब्द की विभिन्न गंभीर एवं मधुर ध्वनियों से मिली थी इसलिए इन वाद्यों को

पुष्कर वाद्य भी कहाँ गया। त्रिपुष्कर वाद्य को मिट्टी से बनाया गया जिस कारण इन्हे 'त्रिपुष्कर' या 'पुष्करत्रय' भी कहाँ गया। त्रिपुष्कर को 'मृदंग' या 'मुरज' भी कहाँ गया हैं। स्वाति मुनि को त्रिपुष्कर वाद्य के निर्माण की मूल प्रेरणा पुष्करिणी से मिली थी। त्रिपुष्कर वाद्य आलिंग्यक, उर्ध्वक और आंकिक इन तीन वाद्यों से मिलकर बना हुआ था जो अवनद्ध वाद्य के श्रेणी में आते हैं। यह वाद्य भीतर से खोखले होते थे, इन सभी वाद्यों के मुख पर चमडा मढा जाता था। इन्हें बजाने के लिए किसी आघात की आवश्यकता पडती थी। इन वाद्यों को बजाने के लिए लकडी का प्रयोग किया जाता था, इनमें से कुछ वाद्यों को निश्चित स्वर में मिलाया जाता था। त्रिपुष्कर वाद्य के तीन भाग होते थे जिनके नाम उर्ध्वक, आलिंग्य, आकिंक थे। इनमें से दो भाग खडे होते थे जिन्हें उर्ध्वक व अलिंग्य कहाँ जाता था और तिसरा वाद्य था जो की लेटा हुआ रहता था उसे अंकिक वाद्य माना जाता था। 'अंक' का अर्थ है गोद में रखकर बजाया जानेवाला भाग अंकिक। वाद्य को आकाश की और करके बजाया जाने वाला भाग उर्ध्वक था और उर्ध्वक के साथ अलिंगित भाग था जिसे 'अलिंग्य' कहते थे।

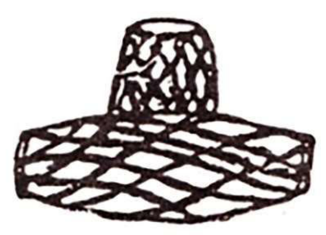

त्रिपुष्कर

अंकिक वाद्य (हरीतकी) :

त्रिपुष्कर के अंकिक इस वाद्य की बनावट हरीतकी इस आयुर्वेदिक फल के समान होती थी। जिसे 'हर्र' अथवा 'हड' भी कहाँ जाता हैं। यह वाद्य वर्तमान काल के 'मृदंग' के समान या पखावज की तरह होता था और जिसे लिटाकर बजाया जाता था। यह वाद्य मिट्टी से बनाया जाता था। इसकी लंबाई साढे तीन बीलात होती थी और अंदर से यह वाद्य खोखला होता था। इस वाद्य के दोनों मुखों का व्यास 12 अंगुल था तथा दोनों मुखों पर चर्म की पुडी का प्रयोग किया जाता था। बद्धी के सहारे इस पुडी को कसा जाता था। पुडी पर गाय के घी के साथ तील को पीसकर मसाले के लेपन का प्रयोग किया जाता था।

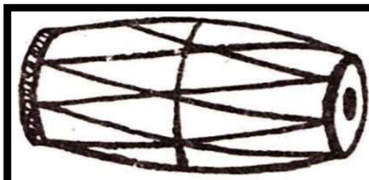

आंकिक

उर्ध्वक (यवाकृति) :

इस वाद्य को यवाकृति वाद्य भी कहाँ जाता है। यह 'जौ' के आकार का होता है। इसका आकार लम्बा, चौडा और वृत्ताकार होता था। इस एकमुखी अवनद्ध वाद्य का निर्माण भी मिट्टी से ही किया गया। बीच में से यह वाद्य खोखला होता था और खडा करके बजाया जाता था। इसकी लंबाई 4 बिलात और मुख का व्यास 14 अंगुल होता था। इसकी पुडी को किसी डोरी या बद्धी के सहारे कसा जाता था।

आलिंग्य वाद्य (गोपुच्छ) :

त्रिपुष्कर वाद्य का तीसरा अंग था जिसे आलिंग्य कहते थे। इसे गोपुच्छा भी कहाँ जाता है। ये गाय की पूँछ की आकार जैसा होता था। यह आकार से गोल, पतला और कुछ नुकीला सा था। इस वाद्य का निर्माण भी मिट्टी द्वारा ही किया गया था। यह वाद्य बीच में से खोखला था और इसे उर्ध्वक की तरह खडा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊँचाई 3 बिलात और मुख का व्यास 8 अंगुल तक था। इसकी पुडी को भी बद्धि या किसी डोरी के सहारे कसा जाता था।

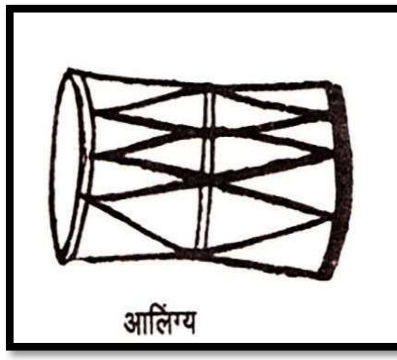

1.2.3. पखावज अथवा मृदंग :

उत्तर भारत में मृंदग को पखावज के नाम से जाना जाता हैं। पखावज का प्रचार और प्रसार ध्रुपद गायन शैली के साथ हुआ। पखावज वादन, उनकी वादन शैली एवं घरानों का उद्‌गम व विकास 18 वीं शताब्दी के बाद ही दिखाई देता हैं। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने मृदंग को मर्दल व मुरज कहाँ हैं तथा भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इसे पुष्कर वाद्य कहाँ हैं। अतः वर्तमान में पखावज का विकास पुष्कर के अंकिक से हुआ हैं ऐसा माना जाता हैं। पखावज की रचना त्रिपुष्कर वाद्य,

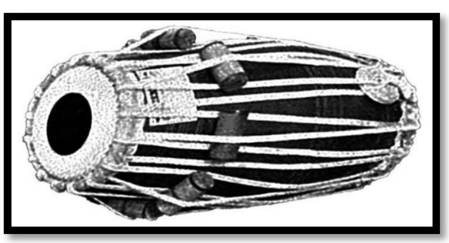

अंकिक वाद्य के समान हैं। इसका एक अंग होता हैं जो शीशम, बीज, आम आदि वृक्षों की लकडी से बनाया जाता हैं। यह मृदंग के समान ही बीच में से खोखला होता हैं।

16 वी सदी से ही उत्तर भारतीय संगीत में ध्रुपद गायन का उल्लेख मिलता हैं। यह ध्रुपद गायन शैली पखावज के विकास का कारण बनी। ध्रुपद गायन संगीत के लिए 'मृदंग' का परिष्कृत रूप ही 'पखावज' कहाँ जाने लगा। पखावज की वादन शैली उसके बनावट के अनुसार होती हैं। पखावज का एक ही अंग तथा बीच में से खोखला होने के कारण एक मुख पर वादन करने से उत्पन्न ध्वनि की प्रतिध्वनी दूसरे मुख के अन्दर से प्राप्त होती है। इस प्रकार पखावज में उत्पन्न होनेवाली ध्वनि गंभीर होती है। पखावज के बनावट के कारण ही उसके बाएँ मुख पर ढोलक समान घुमकदार ध्वनि निकालना सम्भव नही होता। अतः पखावज का वादन खुले बोलों से ही किया जाता हैं। पखावज के दायाँ भागपर किया गया स्याही का उपयोग जिसकी वजह से इसमें ध्वनि साहित्य अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में जादा रहा हैं। धा, ता, धिं, धीट, तीट, किट, तिरकिट, धूमकिट, धेत्ता, कत्ता आदि प्रकार के वर्ण खुले बोल पखावज पर विशेष तौर पर बजाएँ जाते हैं।

1.2.4. ढोल :

ढोल भारत का बहुत पुराना एवं प्रमुख ताल वाद्यों में से एक साज हैं। यह वाद्य गायन और नृत्य के साथ बजाया जाता हैं। ढोल का अधिकतर उपयोग उत्तर भारत में किया जाता हैं। ये हाथ से या छडी से बजाएँ जानेवाले छोटे नगाडे हैं, जो मुख्य रूप से लोक संगीत में लय ताल वाद्य के रूप में इसका प्रयोग किया जाता हैं। इस वाद्य को आम, शीशम, नीम, सागौन की लकडी से बनाया जाता हैं। लकडी का पोला करके दोनों मुखों पर बकरे की खाल डोरियों से कसी रहती हैं। डोरी में छल्ले रहते हैं, जो ढोलक को स्वर में मिलाने के काम आते हैं। चमडे अथवा सूत के द्वारा इसको खींचकर कसा जाता हैं। प्राचीन काल में ढोल का प्रयोग पूजा, प्रार्थना और नृत्य गान में किया जाता था तथा दुश्मनों पर

ढोल

प्रहार करने, खुंखार जानवरों को भगाने, समय व चेतावनी देने के साधन के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता था।

सामाजिक विकास के चलते ढोल का प्रयोग और भी विस्तृत हो गया हैं, जातीय संगीत मंडली, विभिन्न प्रकार के नृत्यगान, नौका प्रतियोगिता, जश्न मनाने और श्रम प्रतियोगिता में ताल व उत्साहपूर्ण वातावरण बनाने के लिए ढोल का प्रयोग किया जाता है। ढोल की संरचना बहुत सरल हैं। आवाज निकालने के लिए ढोल के उपरी और निचली दोनों तरफ जानवर की खाल लगाई जाती हैं, आमतौर पर लोक–नृत्यगान और लोकप्रिय संगीत में इसका ज्यादा प्रयोग किया जाता हैं।

''ढोल की बांयी पुडी बकरी अथवा हिरण की मुलायम खाल की बनी होती हैं तथा दायी पुडी भैंसे या बारहसिंगे की मोटी खाल से बनी होने के कारण इसे लकडी से बजाया जाता हैं। ढोल को इच्छानुसार सुर में करने के लिए कणिका के अतिरिक्त औंठी का भी उपयोग किया जाता हैं। औंठी 6 इंच लंम्बी 1 इंच व्यास की ठोस लकडी की बनी होती हैं। कुण्डली रन्धके पास स्थिर कर ढोल की खिंचाई करते समय इसके ऊपर लकडी की हाथौडी से प्रहार किया जाता हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे गट्टों की चढाने के बाद हाथौडी के प्रहार से तबले को सुर में किया जाता हैं।''[24] ''ढोल को प्रायः खडे होकर बाएँ कधें पर लटकाकर बजाते हैं। दाएँ हाथ में लकडी या गजाबल के साथ इसके दाएँ मुख पर प्रहार किया जाता हैं तथा बाएँ मुख पर बाएँ हाथ से धीमी लय में आघात करते रहते हैं। इसका वादन अधिकतर अन्य वाद्य नगाडा, करताल, दमाऊ, रणसिंघा इ. के साथ किया जाता हैं। इस वाद्य में एकल वादन देखने को नहीं मिलता हैं।''[25]

1.2.5. नगाडा :

नगाडा मूल अरबी शब्द 'नकारा' से उभरा है। नगाडा सबसे बडे वाद्यों में से

एक वाद्य हैं। अवनद्ध वाद्यों में नगाडे को अत्यंत महत्वपूर्ण वाद्य माना जाता है। अवनद्ध वाद्यों में नगाडा वैदिक काल का एक प्राचीन एवं प्रमुख वाद्य के नाम से भी जाना जाता है। इसका नाद गहरा, गम्भीर स्वरूप का होता हैं। प्राचीन काल में नगाडे को लकडी से बनाया जाता था ये आकार से बडा होता था, इसे बजाने के लिए दो

डंडियों की सहायता से दोनों हाथों से बजाया जाता था। प्राचीन काल में राजाओं द्वारा युद्धभूमि में इसकी गर्जना से सैनिकों का उत्साह बढाने के हेतु इसका प्रयोग किया जाता था। दुश्मन के हमले से पहले, दुश्मन पर हमला करने या दुश्मन की ओर बढने के लिए सैनिकों को चेतावनी देने के लिए नगाडे को बजाया जाता था। कालांतर में इसका उपयोग मंदिरों में तथा धार्मिक कार्यक्रम, विवाह के समय भी होने लगा। नगाडे को संगीत रत्नाकर में दुन्दुभी भी कहाँ गया है। आज नगाडे पीतल और तांबे के बनाये जाते हैं। दो भिन्न–भिन्न ध्वनियों को निर्माण करने के लिए इन्हें दो भागों में विभाजित कर दिया हैं। इनमें से छोटे भाग को 'झील' या अघोटी के नाम से जाना जाता हैं, यह मिट्‌टी या फिर लोहे से बने हुए चमडे से मढा हुआ होता हैं। नगाडे का दूसरा भाग शंकु के आकार का होता है और वह धातु का बना हुआ होता है, जिसे धामा कहते हैं। भैसें की खाल की मोटी चमडी का प्रयोग इसे मढने के लिये किया जाता हैं तथा चमडे पर तनाव रखने के लिए भैसें की आंत से बनी रस्सी का प्रयोग किया जाता हैं।

1.2.6. ताशा :

ताशा वाद्य की उत्पत्ति बहुत ही रोचक है। पूर्व काल में समय देखने के लिए घटिका का उपयोग किया जाता था। दो घटिका मतलब एक घंटा हुआ करता था। इस घटिका को समजने के लिए और लोगों को सुचित करने के लिए 'ताशा' वाद्य की निर्मिती की गई। शादी में भी इस वाद्य को बजाया जाता था, इसे बजाने के बाद दुल्हा–दुल्हन एक दूसरे के गले में माला डालते थे। ताशा चपटा व कटोरनुमा वाद्य होता हैं, जो लोहे अथवा तांबे से बनाया हुआ होता हैं। इसका व्यास लगभग 24 सेमी होता हैं। इसके मुखपर बकरे की खाल मढी जाती हैं। खाल को डोरियों अथवा बद्धियों से कस दिया जाता हैं। इसमे एक डोरी बांधी जाती हैं, जिससे इसे गले में लटकाया जाता हैं। अजराडा घराने की रचनाओं में ताशा वाद्य का प्रभाव दिखाई देता है।

ताशा

1.2.7. सम्बळ :

सम्बळ एक चर्मवाद्य है। यह वाद्य महाराष्ट्र में अधिक बजाया जाता हैं तथा वहाँ का अत्यंत लोकप्रिय वाद्य भी हैं। इस वाद्य का उपयोग लोकसंगीत व

लोक–नृत्य के साथ किया जाता हैं। इस वाद्य को विशेष प्रकार के गोंधळ, जागरण धार्मिक कार्यक्रमों में विशेष तौर पर बजाया जाता हैं। इसके भी तबले के समान दो भाग होते हैं। यह दोनों अंग लगभग एकसमान होते हैं। इसे लाठी से बजाया जाता है। लाठी के सिरे को अंग्रेजी के अक्षर ‘S’ की तरह आकार दिया जाता हैं। इसे दूसरे सिरे से पकडकर डंडे से आघात किया जाता है। सम्बळ का ऊपरी भाग खुला रहता है तथा दोनों मुख के नीचे से बंद रहते हैं। खुले मुख पर लोहे के अथवा चमडी के कडों में चमडा कस दिया जाता हैं। चमडे को उपर के कडे एवं नीचे के कडे में मोटी डोरी डालकर कस दिया जाता हैं। सम्बळ के कडी में 12 छिद्र होते हैं। सम्बळ के दोनो अंगों को आपस में बाँध दिया जाता हैं। इसे बजाने के लिए दो डंडियों का उपयोग किया जाता हैं।

1.2.8. डफ :

डफ का उपयोग लोकसंगीत में संगत के लिए किया जाता हैं। डफ

के साथ एक चमडे का पट्टा होता है, जो लकडी या धातु से बनी गोलाकार पट्टी पर लगाया जाता है। एक हाथ से पकडकर दूसरी हाथ की उँगलियों से सहलाते हुए डफ को बजाया जाता हैं। इस वाद्य को महाराष्ट्र में विशेषता पोवाडा इस गायन प्रकार के साथ बजाया जाता है। डफ का उपयोग नुक्कड के नाटकों में भी किया जाता है। इसका व्यास क्षेत्रानुसार अलग–अलग होता हैं। आम तौरपर डफ 10 इंच से 2 फूट 6 इंच तक होता हैं। ‘‘ब्रज में नगाडे को भी चौपाइयों के साथ बजाते हुए होली पर निकाला जाता हैं उसे ‘डफ’ कहते हैं। दक्षिण में इसे

'महानगाडा' कहते हैं। वास्तव में डफ, ढफ, ढफला, चंग आदि एक ही जाति के वाद्य हैं। जो अपने सामान्य रूप तथा वादन विधि के अन्तर सहित देश के सभी भागों में प्रचलित हैं। कहरवा तथा दादरा ताल के विभिन्न रूपों का इनमें बडा आकर्षक वादन होता हैं''।[26] ब्रज तथा राजस्थान में डफ वाद्य को होली का प्रतिक माना गया हैं। भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में डफ का प्रयोग होता है। जहाँ कभी भी होली के वाद्यों का वर्णन आया हैं वहा डफ का वर्णन आवश्य ही मिलता है। डफ को बनाने के लिए पतली लकडी के घेरे पर जो लगभग 6 अंगुल व्यास का होता है, जो पतले चमढ़े द्वारा मढा हुआ होता है।

1.2.9. अवनध्द वाद्यों में तबले का स्थान :

अवनद्ध वाद्य के श्रेणी में नक्कारा, मुरज, सम्बळ, खंजिरा, नाल, ढोल, ढोलक, ताशा, ढोलकी, तबला, पखावज आदि वाद्यों का समावेश होता हैं। इन अवनद्ध वाद्यों में कई ऐसे अवनद्ध वाद्य हैं, जो लकडी की सहायता से बजाएँ जाते हैं। इनमें से कुछ चर्मवाद्य, जिन्हें कुछ गिने चुने गीत प्रकारों के लिए या उत्सवों में ही बजाया जाता हैं। लेकिन, तबला एकमात्र ऐसा साज है की, जो आज दुनियाभर में एकल वादन और साथसंगत के लिए परिचित हैं। इसकी वजह यह वाद्य अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में बाज तथा बनावट एवं वादन साहित्य के विस्तार में अधिक सफल रहा हैं।

शास्त्रीय गायन के संगत के लिए प्राचीन काल से ही मृदंग, पखावज का उपयोग होता था, लेकिन ख्याल, ठुमरी आदि गायन प्रकारों के उद्‌गम के पश्चात साथसंगत के लिए पखावज के स्थान पर तबले का उपयोग किया गया। ध्रुपद–धमार गायन के पश्चात पखावज का उपयोग कम होता गया। आज, ख्याल गायकों में बहुत कम ध्रुपद–गायक दिखाई देते हैं, उसी प्रकार तबला वादकों में कुछ ही पखावज वादक दिखाई देते हैं। इसलिए आज 'तबला' वाद्य ने अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में अत्यंत लोकप्रिय स्थान प्राप्त कर लिया है, और सभी प्रकार के गायन, वाद्य संगीत तथा नृत्य, लोक–संगीत आदि तबला वाद्य के संगति के साथ ही प्रस्तुत किए जाते हैं।

शोधार्थी को यह दृष्टिगोचर होता है कि, आधुनिक काल में तबला वाद्य अन्य अवनद्ध वाद्यों में सर्वोत्तम स्थान पर हैं। इसकी वादन शैली भी काफी विकसित हो चुकी हैं। कुछ अवनद्ध वाद्यों पर सिर्फ दाएँ भागपर स्याही का उपयोग किया जाता हैं, लेकिन तबले के दाएँ तथा बाएँ इन दोनों भागों पर स्याही का उपयोग किया जाता हैं। तबले के बाएँ भाग में लगी स्याही के कारण इस में घुमक, मिंडकाम, घिस्सा जैसे गमकदार ध्वनि निर्माण करना काफी असरदार साबित हुआ। इसके पूर्वतक तबला यह मृदंग की तरह खुले हाथों से ही बजाया जाता था, किन्तु बाएँ में स्याही का उपयोग करने की वजह से तबले पर खुले बोलों के साथ ही बंद बोल भी बजने लगे और इन बोलों के कारण तबला वाद्य अन्य वाद्यों की तुलना में अपनी एक अलग पहचान बनाने में कामयाब हो गया।

आधुनिक काल में सभी संगीत प्रकारों के साथ साथसंगत और एकल वादन के रूप में तबला वाद्य ने काफी सम्मान प्राप्त किया हैं। पहले गायन, वादन, नृत्य के साथ ताल देने के लिए तबला वाद्य का उपयोग किया जाता था, किन्तु बाद में कई विद्वान तबला वादकों ने तबले को एकल वादन के रूप में एक नयी पहचान दिलायी एवं तबला वाद्य को प्रसिद्धी के शिखर पर पहुंचाया। तबला वादन के साहित्य का विस्तार करने के लिए अनेक ताल वाद्यों से बोलों को लिया गया हैं। ढोलक, नक्कारे से लग्गी तथा किनार के बोल, मृदंग से परन, रेला तथा नृत्य से परन, मुखडा, गत आदि। आज तबला वादन के वादन सामग्री में रचनाओं का विशाल भण्डार पाया जाता हैं तथा पखावज के साथ ही अन्य अवनद्य वाद्यों के भी सभी बोलों को तबलेपर बजाने की क्षमता है। इस प्रकार वर्तमान समय में तबले का साहित्य किसी भी अवनद्ध वाद्य की साहित्य से अधिक सौंदर्यपूर्ण एवं समृद्ध हो गया हैं।

प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्यों के स्वर को कम या जादा करने के लिए रस्सी का प्रयोग किया जाता था, बाद में बद्धियों का उपयोग किया गया। आधुनिक काल में तबले की पुडी पर तनाव खीचा रहे इसलिए बद्धियों द्वारा लकडी के गट्टो को फंसाया जाता हैं। हाथोडी की सहायता से तबले को अपेक्षित मूल स्वर में मिलाया जा सकता है, जो वादन के समय काफी समयतक स्थायी रूप से विद्यमान

रहता हैं। तबले की तरह किसी भी स्वर में स्थापित करने की सुविधा अन्य किसी भी अवनद्ध वाद्य में नहीं पायी जाती।

शोधार्थी ने देखा है कि, अवनद्ध वाद्यो में तबला वाद्य अधिक प्रगत रहा इसकी वजह यह भी हैं कि, तबले में निकलनेवाला खड्ज और तारध्वनि का उत्तम मिलाफ। सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि, दुनियाभर में जितने भी अवनद्ध वाद्य हैं, उनमें खड्ज एवं तार ध्वनि का निर्माण किया जाता हैं, दुनियाभर के इन वाद्यों में खड्ज एवं तार ध्वनिकी सहायता से ही इनकी भाषा व्यक्त होती हैं। पाश्चात्य ड्रमसेट से लेकर पखावज, तबला, मृदंग से लोकसंगीत में बजनेवाले नगारा, ढोलक, ढोलकी, दिमडी आदि सभी वाद्यों में खड्ज तथा तारध्वनि का निर्माण होता हैं। पखावज वाद्य के बायाँ पर आटा का उपयोग करके खड्ज ध्वनि निर्माण किया जाता हैं। पखवाज, तबला, ढोलक, ढोलकी आदि वाद्यो के दायाँ में से तार ध्वनि उत्पन्न होती हैं। नगारा वाद्य में मध्यभाग पर आघात करने से खड्ज तथा किनारपर बजाने से तारध्वनि उत्पन्न होती हैं।

शोधार्थी को लगता है कि, सभी चर्म वाद्यों पर आघात से कमजादा सुर उत्पन्न होता ही हैं और कुछ प्रमाण में उसे दूसरे सुर के साथ मिलाया भी जाता हैं, लेकिन तबला एकमात्र ऐसा साज है जो तानपुरे के सुर के साथ काफी एकरूप होता है, तानपुरा से निकलने वाले सुर के साथ पूरी तरह से स्वरबद्ध मिलता हैं और यह सिर्फ अन्य अवनद्ध वाद्य की तुलना में तबला या मृदंग जैसे वाद्य पर ही संभव हुआ हैं। तबला वाद्य एक सुरीला होने की वजह से ही इसका उपयोग अन्य वाद्यों की तुलना में साथसंगत के लिए अधिक होता हैं। तबले से निकलनेवाला खड्ज और तार ध्वनि इसके लिए तबले के दायाँ और बायाँ दोनों जगह पर स्याही का लेपन किया जाता हैं, जो अन्य अवनद्ध वाद्य पर नहीं किया गया हैं। इसकी वजह से स्वतंत्र वादन के साथही साथसंगत के लिए भी तबला यह वाद्य अधिक लोकप्रिय रहा हैं।

तबला वादन में जोरदार एवं खुले बोल तथा बंद, मुलायम दोनों प्रकार के बोलों को निकालना सम्भव होने के कारण तबला वादन में अधिक मिठास निर्माण होती है। तबला यह वाद्य एक उर्ध्वमुखी वाद्य है तथा इसकी उँचाई सीमित होती है, इसी कारण इस वाद्यपर विभिन्न लयकारी में तैयारी के साथ वादन करने में भी

सुलभता निर्माण होती हैं। तबले पर बजनेवाले खुले बोल एवं बंद बोलों के कारण यह वाद्य धृपद तथा धमार जैसी गंभीर प्रकृति की गायनशैली एवं ख्याल गायनशैली व सुगम संगीत जैसे गान प्रकारों के साथ साथसंगत करने में भी पूरी तरह से सक्षम रहा हैं। अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में तबला वाद्य के साहित्य में वर्तमान समय में बहुत वृध्दि् हो गयी हैं। आज, तबले के छात्रों कों सिखने के लिए अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से तबले के एकल वादन द्वारा तबला वाद्य का प्रचार–प्रसार हो रहा हैं और तबला वाद्य का महत्व दिन ब दिन बढता ही जा रहा हैं। तबला यह वाद्य अन्य सभी अवनद्ध वाद्यों के वर्ण–बोल, साहित्य आदी को ग्रहण करने की क्षमता रखता हैं। लगभग सभी प्रकार के अवनद्ध वाद्यों की नकल तबला वाद्य कर सकता हैं, लेकिन इसकी नकल कोई दूसरा अवनद्ध वाद्य नहीं कर सकता।

शोधार्थी के विचार से आधुनिक काल से लेकर आज तक कई अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ हैं, लेकिन इन अवनद्ध वाद्योंपर तबले की तरह विस्तारक्षम रचनाओं को नहीं बजाया जाता हैं। तबला इस वाद्य की बनावट तथा बाज अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में बिलकुल अलग होने की वजह से तबला इस वाद्य पर ही विस्तारक्षम रचनाओं को बजाना मुमकीन हो पाया हैं। सभी तालों में खाली–भरी होती हैं, लेकिन तबला इस वाद्य ने विस्तारक्षम रचना द्वारा दिखा दिया की रचनाओं में भी खाली–भरी होती हैं। विस्तारक्षम रचनाओं में खाली–भरी का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व विद्यमान रहता हैं तथा यह प्रकार अन्य किसी भी लय–ताल वाद्यों में नहीं पाया जाता हैं। फलतः, तबला वाद्य अन्य लय–ताल वाद्यों की तुलना में अत्यंत श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण माना जाता हैं, इसलिए स्वतंत्र तबला वादन में पेशकार, कायदा, रेला आदि विस्तारक्षम रचनाओं की वजह से तबला वाद्य ने अपनी एक अलग पहचान बनायी है।

तबला वाद्य में 'साथसंगत' यह एक प्रमुख कारक हैं, क्योंकि तबला इस साज का जन्म ही साथ–संगत के लिए हुआ हैं। तबला वाद्य की बनावट की वजह से ही उत्तर भारतीय संगीत में लगभग सभी संगीत प्रकारों के साथ साथसंगत के लिए तबला वाद्य की आवश्यकता होती हैं। इसी वजह से अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना में तबला वाद्य की व्याप्ति अधिक विशाल हो चुकी हैं। अन्य वाद्यों की तुलना

में तबला वाद्य पर बजनेवाली उँगलियों का स्वतंत्र आघात, एकत्रित आघात, निकास पद्धति आदि की वजह से तबले में अलग नादवैविध्द् निर्माण हुआ हैं, जिसमें बायाँ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। बायाँ से निकलने वाली मिंड, घुमक, घुमारा, घिस्सा, दाब, उभार, थाप तथा तबले से चाँट, सुर, थाप, चपकी, आस, जर्ब आदि आघात की वजह से इस वाद्य ने साथसंगत के साथही स्वतंत्र वादन में अन्य अवनद्ध वाद्यों की तुलना अपनी अलग पहचान बनायी हैं। इसमें तबले की भाषा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। तबले की भाषा में तालव्य, कंठय व दंत्य इत्यादी प्रकार के बोल आते हैं। ओष्ठय प्रकार के बोल तबले की भाषा में वर्जित किए गये हैं।

आज तालवाद्यों के सभी अवनद्ध वाद्यों में तबला वाद्य ने अग्रस्थान प्राप्त कर लिया है। गायन के साथ संगत में तबला वाद्य सप्तक के निश्चित स्वर षड्ज, मध्यम, पंचम, निषाद जैसे किसी भी स्वर में मिलाया जा सकता हैं। तबला वाद्य का विकास जिस प्रकार होता गया वैसे ही इसकी वादन विशेषताओं का भी विकास होने लगा और जिसकी वजह से अनेक वादन शैलियों का निर्माण हुआ, जो बाज या घराने के नाम से परिचित हैं। आज के समय में तबला वाद्य काफी विकसित हो चुका है। साथही जनसामान्य में सबसे लोकप्रिय वाद्य के रूप में स्थान बनाने में यह वाद्य अधिक सफल रहा है, ऐसा शोधार्थी का मानना है। आगे तबले के बाज तथा घरनोंपर चर्चा की गई हैं।

1.2. बाजः

बाज शब्द का अर्थ हैं बजाने की या ध्वनि निर्माण करने की विशिष्ट पध्दति। तबला यह उर्ध्वमुखी वाद्य है और यह हाथो की उँगलियों कि मद्द से तथा पंजे की सहाय्यता से बजाया जाता हैं, तथा पखावज की तुलना इसपर अति द्रुतलय में भी बजाना आसान होता हैं। तबले में दायाँ और बायाँ के प्रत्येक उँगलियों का स्वतंत्र उपयोग तथा पखावज के स्वर में जो चौडापन था और जोर का उपयोग होता था, वो कम होता गया। जहाँपर जरूरी हो वहाँ पर कोमल तथा मुलायम ध्वनि निकालना संभव हुआ और अधिक गतिसे वादन करने में भी इसकी सहायता हुई। तबले की बनावट और बाज की वजह से अतिविलंबित लय में तबले से निकलने

वाली आस या कभी–कभी बायाँ पर निकलने वाले धुमारे की सहायता से लय को स्थिर रखने में तबला वाद्य कामयाब हो सका। कुछ समय पश्चात ख्याल गायन के कई घराने निर्माण हुए जिनमें, प्रमख तौर पर स्वरप्रधान, लयप्रधान, स्वर–लयप्रधान इन तीन तत्वोंपर घरानों का निर्माण हुआ। इन सभी ख्याल गायन के घरानों को जिस प्रकारकी साथसंगत की अपेक्षाएँ थी, वो सभी तबला इस वाद्य ने पूरी क्षमता के साथ आवश्यकता नुसार पूरी की। अतिविलंबित लय से लेकर अणुद्रुत लय में बजाने की क्षमता तबला वाद्य के पास होने की वजह से गायन के साथ ही तन्तुवाद्य व कथक नृत्य के साथ भी यह वाद्य काफी असरदार साबित हुआ।

तबले की भाषा पखावज, या मृदंग की भाषा पर आधारीत होने के बावजूद भी तबले की भाषा अधिक प्रगत हुई। तबले के साहित्य में तालव्य, कंठय और दंत्य व्यंजनों का उपयोग किया गया। क, घ या फिर ग, त, द, न, ट, र इन सात व्यंजनों का उपयोग तबले की भाषा में दिखाई देता हैं। ओष्ठ्य व्यंजनों को तबले में नहीं लिया गया हैं। उत्तर भारतीय संगीत में सभी संगीत प्रकारों के साथ साथ–संगत करनेवाला तबला एक प्रमुख तालवाद्य के नाम से गौरान्वित होने के पश्चात वह स्वतंत्र तबला वादन के रूप में भी विकसित हुआ है ऐसा शोधार्थी का मानना है।

1.3.1. तबले के प्रमुख बाज :

तबले के प्रमुख दो बाज हैं; एक बंद बाज, और दुसरा खुला बाज। स्वतंत्र तबला वादन में पहले दो बाजो का निर्माण हुआ, दिल्ली बाज और लखनऊ बाज जिसे पुरब बाज भी कहाँ जाता हैं। दिल्ली घराने ने बंद बाज तथा लखनऊ घराने ने खुले बाज का स्विकार किया। विभिन्न तबला वादकोंने तबला–वादन में सौंदर्यता निर्माण करने के लिए अपने–अपने घराने बना लिए और इसके फल–स्वरूप उनके बोलों के निकास विधी तथा उनकी बंदिशो में अंतर निर्माण हो गया। सभी घरानों ने अपनी–अपनी शैली को अन्य घराने से अलग किया जिसे 'बाज' कहाँ जाता हैं। इन विशिष्ट शैली के जरिए विभिन्न घरानों का निर्माण हुआ। तबले पर बजनेवाले वर्ण, अक्षर, पाटाक्षर सभी घरानों एवं बाज में एक जैसे ही होते है। सभी घरानों में 'धा' को 'धा' और 'धिं' को 'धिं' ही कहते हैं। परन्तु विभिन्न घरानों में उन्हें निकालने के

विधी में थोडा अंतर होता है। प्रत्येक घराने में कुछ मौलिक रचनाएँ निर्माण हुई हैं और घरानों के इन विदवानों ने इन्हें निकालने के विधी में अनेक परिवर्तन किए। तबले पर बजने वाली रचनाओं में विस्तारक्षम रचनाएँ व पूर्वसंकल्पित रचनाओं का समावेश होता हैं, परन्तु इन रचनाओं का महत्व सभी घरानों में भिन्न–भिन्न स्वरूप में हैं। इन बाज के सहायता से विभिन्न घरानों के वादकों ने अपनी–अपनी प्रतिभानुसार बोल संरचना एवं अन्य वादन तथ्यों के आधार पर जो विशेषताएँ निर्माण की, उनसे तबला वादन की कई विशिष्ट शैलियों का विकास हुआ, जो विशिष्ट घरानों में बाज के नाम से आज लोकप्रिय हुई हैं और बंद बाज तथा खुला बाज के नाम से ये प्रचलित भी हुई हैं।

1.3.2. बंद बाज :

इस बाज में तबला पर उत्पन्न होनेवाली आस सीमित होने की वजह से इसे 'बंद बाज' कहाँ जाता हैं। स्वतंत्र तबला वादन का एक प्रमुख तत्व हैं की नाद जितना बंद होगा या आस जितनी सीमित होगी, उतना ही अपने वादन में वेग अधिक निर्माण होगा।''दिल्ली घराना कभी–कभी अपवादात्मक रूप से रहा हैं, दो उँगलियो का बाज होने की वजह इस घराने में जादा गतिमानता पाई नहीं गई।''[27] तबलेपर निकाला गया अक्षर और उसकी आस कम होने की वजह से उसका असर कम करने के लिए दूसरे अक्षर को बजाने की आवश्यकता होती हैं इसी वजह से बंद बाज में 'कायदे','रेले' जैसे विस्तारक्षम रचनाओं की संख्या अधिकतर दिखायी देती हैं। सभी उँगलियों को समान महत्व देते हुए और निर्माण होनेवाली आस सीमित होने की वजह से इस बाज में गतिमानता अधिक दिखायी देती हैं। तबले में चाँटी का अधिक उपयोग होने की वजह से शुध्द नाद को अधिक महत्व दिया गया हैं। पखावज पर बजाने के लिए जिन उँगलियों का तथा हथेली के पूरे पंजो की सहाय्यता से तैयार होनेवाली अक्षरों का कोई भी असर इस बाज पर दिखायी नहीं देता हैं। इस बाज में विस्तारक्षम रचनाओंकी विपुलता अधिकतर दिखायी देती हैं। बंद बाज में दिल्ली, आजराडा इन घरानों का समावेश होता हैं। दिल्ली घराने को अन्य घरानों का जनक माना जाता हैं। दिल्ली घराने के वादन शैली में थोडा बहुत बदलाव करके अन्य घरानों की नींव पडी हैं। दिल्ली बाज की अपने वादन में सब

से बडी विशेषता यह है की, इसमें बजनेवाले बोलों की गूंज कम होने की वजह से बोलों का प्रभाव नष्ट होने से पहले, दूसरे बोलों से आघात करके बजाना पडता हैं। दिल्ली घराने में पेशकार, कायदा, रेला आदि विस्तारक्षम रचनाओं का वादन पूर्वसंकल्पित रचनाओं की तुलना में अधिक किया जाता हैं।

1.3.3. खुला बाज :

इस बाज में बंद बाज से पूर्णतः विपरित परिणाम दिखायी देते हैं। पखावज वाद्य की पूरी छाप इस घराने के वादन पर दिखायी देती हैं। खुला बाज याने पखावज का बाज। पखावज पर बजायी जानेवाली वादन विशेषतः दिखानेवाला बाज। पखावज वाद्य पर बजाएँ जाने वाले पूरे पंजे का उपयोग तथा सभी उँगलियों का उपयोग वादन के लिए खुले बाज में किया जाता हैं। इसमें निकलनेवाले बोलों की आस अधिक गुँजमय होती हैं, इसलिए इसे 'खुला बाज' के नाम से जाना जाता हैं। पखावज का प्रभाव अधिक होने की वजह से हाथ के पूरे पंजे का तथा उँगलियों का उपयोग नादनिर्मिती के लिए किया जाता हैं। तबलेपर बजाने के लिए लव का तथा बायाँपर खुले हाथ का उपयोग किया जाता हैं। गत, गत–परन, गत–तोडे चक्रदार आदि रचनाप्रकार खुले बाज में अधिक दिखाई देते हैं। इस बाज में पूर्वसंकल्पित रचनाएँ अधिकतर दिखायी देती हैं। इस बाज के अन्तर्गत लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस, पंजाब आदि घराने आते हैं।

गायन शैली को जिसप्रकार 'गायकी' कहते हैं उसी प्रकार वादन पद्धति को बाज कहाँ जाता हैं। प्रत्येक कलाकार अपने वैचारिक अध्ययन के जरिए अपनी कला में परिवर्तन करके किसी एक नई कला का निर्माण करता हैं, उसी प्रकार संगीत में अपनी–अपनी शैलियों का निर्माण होने लगा जिसके फलस्वरूप संगीत में विभिन्न घरानों का एवं शैलियों का विकास होता गया और प्रत्येक घराना यह अपनी–अपनी गायन शैली तथा वादन शैली के आधार पर पहचाना जाने लगा।

1.3.4. घरानों का निर्माण :

संगीत में 'घराना' शब्द अपने व्यावहारिक जीवन में उपयोगी होने वाले 'घराना' शब्द से साधर्म्य रखता हैं। रीती–रिवाज परंपरा और खानदान को लेकर भी 'घराना' शब्द रूढ हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत में घराना इस परंपरा का निर्माण

मध्यकाल के समय मुस्लिम शासनकाल में हुआ ऐसा कहाँ जाता हैं। संगीत के क्षेत्र में शास्त्रीय गायन, कथक नृत्य, सितार और तबला इन शाखाओं में अलग–अलग घराने निर्माण हुए और अपनी इस खास शैली एवं परंपरा को इन घरानों के कलाकारोंने बखुबी सँभालकर रखा और उसे अच्छी तरह निभाया तथा पीढी दर पीढी आगे बढाने का कार्य किया।

घराना याने कई पीढीयों से चल रही विशिष्ट प्रकारकी शैली व रचनाएँ हैं और इन शैलियों को ही घराना नाम से संबोधित किया जाता हैं। पं. अमोद दंडगे अपनी मराठी अनुवादित 'सर्वांगीण तबला' ग्रंथ में घराने के संदर्भ में कहते हैं की ''विशिष्ट विचारप्रणाली अर्थात रचना व त्या विचारांना सौंदर्यपूर्णरित्या व अतिशय प्रभावीपणे प्रकट करू शकणारी निकासपध्दती (शैली) यांचा सुरेख मिलाफ म्हणजे घराणे होय.''[28] घरानों का निर्माण कब हुआ यह जानना अत्यंत कठिन कार्य हैं। ''तबले में 'घराना' इस कल्पना का सफर 'नयीसोच' या फिर किसी 'विशिष्ट प्रकार की शैली' के साथ शुरू हुआ होगा। कोई भी नये विचार की कल्पना जब पहली बार प्रकट होती हैं तो वह एक नाविन्यता प्रदान करती हैं, लेकिन वही विचारकल्पना किसी विशिष्ट शैलीद्वारा पीढी दर पीढी व्यक्त होती रहती हैं तो वह एक नयी शैली के साथ–साथ एक घराने के रूप में तबदील हो जाती हैं और यह नये विचार, नयी सोच तथा विशिष्ट प्रकारकी नयी शैली ही तबले के घरानों को निर्माण करने में मददगार साबीत हुई होंगी।''[29] ''पं. मुकुंद भाले जी के अनुसार 'तबले के विभिन्न घरानों का विकास दरअसल तबले की बनावट, से जुडा हैं। तबले की बनावट में जैसे–जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे वैसे तबले की नादात्मकता और उससे उत्पन्न ध्वनियों में अन्तर आता गया। इन सारी बदली हुई खूबियों को सम्मेलित करने के प्रयास से ही नये घरानों का जन्म हुआ।'[30]

शोधार्थी को यह लगता है कि, मनुष्यप्राणी हमेशा से ही असंतुष्ट रहा हैं और मनुष्यकी यही असंतुष्टता तथा दूसरो से कुछ अलग करने की वृत्ती ही इन घरानों के निर्माण की वजह हो सकती हैं। विशिष्ट प्रदेश की ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं राजकीय परिस्थितियाँ भी इनमें समाविष्ट हो सकती हैं। तबले के सभी घरानों के बुजुर्ग तबला वादकोंने अपने–अपने घराने की खासियत दर्शाने के लिए अनेक प्रकारकी विशेष रचनाएँ बनाई और इन रचनाओं को बजाने के निकास विधि में

परिवर्तन करके अन्य घरानों से अलग अपनी शैली का निर्माण किया। कई विद्वानोंदवारा कहाँ जाता हैं कि, किसी विशिष्ट शैली को लगभग तीन पीढियों तक चलाने के बाद ही इन्हें किसी विशिष्ट घराने का दर्जा प्राप्त होता हैं।

अतः यह दृष्टिगोचर होता है कि, तबलावादन में बहुतसी विस्तारक्षम रचनाएँ एवं पूर्वसंकल्पित रचनाएँ बजाई जाती हैं, जिनमें पेशकार, कायदा, रेला, टुकडा, मुखडा, मोहरा, गत, परन आदि रचनाएँ आती हैं, परन्तु इन सभी रचनाओं का विभिन्न घरानों में अलग–अलग महत्व हैं, बजाने का तौर–तरीका अन्य घराने से अलग हैं। दिल्ली घराने में कायदे, रेले जैसे विस्तारक्षम रचनाओं को अधिक महत्व दिया गया हैं, तो फर्रूखाबाद घराने में रौ, गत, चक्रदार टुकडे और चाला या चलन जैसी रचनाओं का उपयोग किया जाता हैं। बनारस घराने में परन, बाँट, गत, फर्द, और लडी आदि रचनाएँ इस घराने की खासियत हैं। सभी घराने के तबला वादकोंने अपनी विशिष्ट शैली के साथ इन रचनाओं की सौंदर्यता में वृध्दि करके अपनी शैली को भी अगले पीढीतक आगे बढाया। इस तरह भारतीय संगीत में आज विभिन्न घरानों का अस्तित्व दिखाई देता हैं और अपनी–अपनी एकखास विशेषता की वजह से ही सभी घराने एक दूसरे से अपनी अलग पहचान बनाने में कामयाब हुए हैं।

1.3.4.1. परंपरागत वादन प्रणाली :

भारतीय संगीत की एक खास विशेषता हैं यानी, वह परंपरा से चली आ रही हैं। हमारे पास कितनेही बडे घरानेदार कलाकार क्यों न हो, लेकिन उनमें से कई कलाकर अपनी सीखी हुई कला के अलावा अन्य किसी भी शिक्षा से उनका कोई नाता नहीं होता था। ये कलाकार जादा पढे लिखे भी नही होते थे, केवल कुशाग्र स्मरणशक्ति, एकाग्रता एवं मेहनत के जोरपर ही सभी कलाओं को संभालकर रखा जाता था एवं सीखा जाता था। भारतीय संगीत खास तौर से गुरूमुख याने गुरू के सामने बैठकर सीखा जाता है और इसे ही अधिक महत्व देता है। कोई भी गुरू अपने खुद के गुरू से प्राप्त संस्कार, शिक्षा एवं कला–प्रस्तुतीकरण की शैली तथा कला–विचारों को आत्मसात करता हैं। ऐसे प्रस्तुतिकरण के नियम, अनुशासन, परंपरा आदि सबको शिष्य अपने गुरू से ग्रहण करके आगे चलके अपने शिष्यों को प्रदान करते हैं।

''कोई भी उस्ताद या गुरू अपने शिष्यों को कोई भी कला सिखाते समय शिष्य अपनी सीखी हुयी कला को इमाने ऐत बारसे संभालकर रख सके और उसे प्रामाणिकता के साथ अगले पीढी तक बढा सके इसका भरोसा गुरू या उस्ताद को मिलने के बाद ही उन्हें शिक्षा दी जाती थी और सौ में से नीन्यानवे शिष्य उस कला को कठोर अनुशासन के साथ, एकनिष्ठता तथा गुरू या अपनी कला के प्रति आदरभाव रखते हुए उसका प्रचार एवं प्रसार करते थे। लेकिन इन सौ शिष्यों में से कोई एक ही शिष्य या गुरूपुत्रो में से एक ही ऐसा होता हैं जो कई सालो से चली आ रही इस परंपरा को छोडकर अलग विचार या अलग सोच से प्रेरित होकर किसी खास ऐसी शैली का निर्माण करता हैं'' ।[31] अपनी इस नयी शैली की पहचान बनाने के लिए इसे कोई नया नाम देना आवश्यक होता था, इसके लिए घराने के उन्हीं वादक कलाकारों के जन्मस्थान का नाम देते थे या फिर यह संगीत कला जिन राजाश्रय में पली–बढी, वहाँ का नाम उस घराने को दिया जाता था जैसे, दिल्ली, लखनऊ पंजाब आदि। घराने की यह परंपरा कम से कम तीन पीढीयों तक अबाधित रूप से चलती हैं तभी उसे नये घराने के रूप में मान्यता मिलती थी। ''तीन पीढी तक अबाधित रूप से न चल पाने के कारण ही उस्ताद चूडियाँवाले इमाम बख्श द्वारा स्थापित भटोला घराना, उ. अमीर हुसैन खाँ द्वारा स्थापित मुंबई घराना और उ. अहमदजान थिरकवाँ द्वारा स्थापित मुरादाबाद घराने को संगीत समाज की स्वीकृती नहीं मिल पायी।''[32]

1.3.4.2. गुरू–शिष्य परंपराः

घराने यह वस्तुतः पुराने गुरूकुल के प्रतिक हैं। प्राचीन काल से ही सभी प्रकार की विद्या गुरू–शिष्य परंपरा द्वारा प्राप्त की जाती थी। गुरू–शिष्य परंपरा एक ऐसी परंपरा है जहां संगीत को साधना के रूप में कई वर्षो तक सिखाया जाता हैं। तभी कहाँ गया हैं–''एक साधे सब साधे, सब साधे सब जाय।'' गुरू–शिष्य परंपरा में कोई भी कला हो उसे सीखने के लिए गुरू के आश्रम में रहना पडता था। शिष्य को बिना किसी शिकायत या बिना कुछ सवाल पुछे गुरू जो भी कुछ काम कहे वो करने पडते थे। गुरू के ईच्छानुसार कार्य करते रहना यही एकमात्र उद्देश गुरू–शिष्य परंपरा में रहता था। गुरू–शिष्य परंपरा में गुरू जब सिखा रहे

होते हैं तो शिष्य को लिखने की अनुमति नही होती थी। पं. अरविंद मुळगावंकर अपने 'तबला' ग्रंथ में लिखते हैं कि, ''उ. अमिर हुसेन खाँ सहाब अपने शिष्यों को जब सिखाते थे तो उस समय किसी भी शिष्य को कोई भी बंदीश हो उसे लिखने की इजाजत नही होती थी, खाँ सहाब कहते थे 'बेटा याद कर लेने की आदत रखो। हमारे उस्ताद ने ऐसा ही याद करवाया हैं इसलिए सात–आठ घंटो का तबला महफिल में बजता हैं, और कोई भी चीज दुबारा नही बजती।''[33] गुरूशिष्य परंपरा में गुरू अपनी मर्जीनुसार सीखाते थे, जितना समय चाहे सिखाते थे और शिष्य को बिना किसी शिकायत किए गुरू से शिक्षा लेनी पडती थी। गुरू–शिष्य परंपरा में किसी भी एक घराने के शिष्य को दुसरे घराने की कला को देखने की या सुनने, सिखने की अनुमती भी नही दी जाती थी।

''कई तबले के उस्तादो ने अपना ज्ञान शिष्य अपने से जादा सवाई ना हो सके इस डरसे उसे छुपाकर रखा इस वजह से बहुत सी अच्छी बंदिशे तथा रचनाएँ आगे के पीढीतक ना पहुँचने की वजह से कई कलाकार इन पारंपारीक बंदिशोसे, रचनाओं से वंचित रह गये। कई अच्छे उस्ताद अपनी कला बिना किसी को सीखाये या किसी शिष्य–परंपरा को तैयार किए बिना ही परलोक सिधार गये। इस वजह से कई उस्तादों के घराने पिछे रह गये और जो उस्ताद इस घराने के वादक हैं, ये सिर्फ उनकी तैयार की गयी रचना द्वारा ही अनुमान किया जाता हैं।''[34] कई तबले के विद्वान कलाकार बजाते समय अपना वादन अन्य कोई वादक कलाकार सुन रहा हैं यह जानने के बाद एक तो वादन रोकते थे या फिर कुछ अतिरिक्त वादन करके समय निकालते थे। दुसरे घराने का कोई शिष्य अगर सिखने के लिए आए तो उसे सिखाने से मना किया जाता था अगर सिखाना भी हो तो उसे हाथ सिकोडकर सिखाते थे। इस वजह से तबले की बहुतसी पारंपारीक बंदिशे लुप्त हो गयी और आगे की पीढी इन रचनाओं से वंचित रह गयी। शोधार्थी को लगता है कि, तबले की इन घरानों के निर्माण से एक फायदा निश्चित तौर पे यह हुआ कि कलाकारों के बीच एक प्रकारकी प्रतियोगिता निर्माण हो गयी और ईर्ष्या की वजह से और जादा रियाज, मेहनत करके अच्छे तबला वादकों की संख्या में बढोती हुई। कई विद्वान कलाकारों द्वारा कहाँ जाता हैं की, एक तप तक कठोर मेहनत, रियाज करके ये वादक कलाकार नाम कमाने के लिए कई गांव या शहर

जाकर अपनी कला की प्रस्तुती करते थे और किसी मैफिल में उपस्थित कलाकारों के बीच अपमानित होने के पश्चात या फिर पराजित हाने के बाद और भी कडी महेनत से रियाज करके अगली बार फिरसे प्रतियोगिता में सहभागी होते थे।

शोधार्थी को दृष्टिगोचर होता है कि, अलग–अलग घरानों की शैली, उनका वादन विशेषता इनका बारिकी से अभ्यास करके अवशोषित करने की कोशिश जिन–जिन तबला वादकोंने की उन्होंने खूब नाम कमाया तथा कई कलाकार तो उस घराने के संस्थापक के रूप में भी आगे आये। पहले के समय में राजाश्रय था। कई संस्थानिक, नवाब कला के शौकिन थे, चाहते थे अपने यहाँ दूरदूर से अच्छे कलाकारों को अपनी कला प्रस्तुती के लिए अत्यंत आदरपूर्वक बुलाते थे, उनके कला की कदर करते थे, और उनका उचित सन्मान करके उनके गुजारे की अच्छी तरह से खातरदानी करते थे। इस वजह से पूराने कलाकार निश्चिंत थे, हमेशा से ही अपने कला में मग्न रहते थे तथा खुदका और घराने का नाम आगे बढाने में, रोशन करने में और अच्छी शिष्य परंपरा तयार करने में व्यस्त रहते थे, लेकिन आज वो परिस्थिती नही रही हैं। इस वजह से कुछ सालो के बाद हमारे भारतीय संगीत को मिली हुई इस घरानो की परंपरा कही इतिहास में ना शामिल हो, इसका डर लगता हैं।

1.3.4.3. तबले के विभिन्न घरानोंका वादनशैलीनुसार विकास :

सभी घरानोंने अपने उपलब्ध साहित्य से अपने घराने के सुस्पष्ट विचार रखे, घराने की विशेषता दर्शानेवाली अनेक रचनाओं का निर्माण करके शिस्तबध्द साधना के साथ अपने घराने का एक अनुशासन बनाया तथा अपने घराने की अन्य घरानों से एक अलग पहचान बनाई। दिल्ली घराना सभी घरानों का जनक रहा है। दिल्ली घराने के शिष्य सभी नगरों में फैल गये और स्थायी रूप से बस गये। उन लोगों ने अपने वादन में, स्थानिक परिस्थितियों के आवश्यकता नुसार एवं निजी प्रतिभा एवं सृजनशक्ति के आधार पर परिवर्तन करके अपने अलग बाज की नींव डाली और अपने घराने की एक अलग पहचान बनाई। उस नवनिर्मिती का अनुकरण उनके वंश एवं शिष्यों द्वारा कई पीढीयों तक चलता गया तथा कालाण्तर में उसे एक घराने की मान्यता मिली। इस प्रकार आज उत्तर भारतीय संगीत में तबले के दिल्ली,

अजराडा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस, पंजाब आदि छह घराने है और सभी घरानों की शैली अलग हैं। इनके रचनाओं की सौंदर्यदृष्टि अलग हैं और अपनी इस विशेषता की वजहसे ही ये घराने अत्यंत लोकप्रिय बन चुंके हैं। आगे तबले के प्रमुख छह घरानों के ऊपर चर्चा की गई हैं।

1.3.4.4. दिल्ली घराना–संस्थापक–सिधार खाँ ढाढी :

स्वतंत्र तबला वादन के घरानो में सबसे पुराना और आद्य घराना के नाम से दिल्ली घराना जाना जाता हैं।''अमीर खुसरो जैसे विद्वान संगीत तज्ञ तथा मियाँ तानसेन जैसे कलाकार का वास्तव्य भी दिल्ली में ही था। दिल्ली के तख्त पर बैठे हुए सुलतान बादशहा बलशाली तथा बहुत अमीर होने की वजह से इनके दरबार में कई नामी कलाकारों को अपनी कला की प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया जाता था। इस घराने का उद्‌गम दिल्ली में 18 वी शताब्दी में दुसरे महम्मदशाह के राजकाल में हुआ। बादशहा के राजकाल में 'ख्याल गायन' को अधिक महत्व मिला था और वह अधिक प्रचलित हो चुँका था और उसी गतिसे धृपद–धमार जैसी रचनाएँ पीछे पड रही थी इसी वजह से ख्याल गायन के साथ पखावज की जो संगत हो रही थी उसकी जगह तबला वाद्य ने ली। दिल्ली घरानो के तबला वादकोंने तबले में स्वतंत्र स्थान निर्मिती के लिए पखावज की भाषा का उपयोग अपने वादन पर नही होने दीया।''[35]

मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार के प्रतिभा सम्पन्न संगीत कलाकार सिध्दार खाँ ढाढी पदस्थ थे। श्रृंगार रस प्रधान गीतों तथा ख्याल गायकी के लिए मृदंग, पखावज, ढोलक आदि वाद्यों की अपेक्षा अन्य किसी ताल वाद्य की आवश्यकता उन्होंने महसूस की तथा दो अंगो वाले, तबले में सुधार कर उस में नवीन वादन शैली को प्रस्तुत किया। उन्होंने तबले के चाँटी एवं बायाँ पर ढोलक समान घुमकदार नवीन रचनाओं का निर्माण किया। इन बोलों का उपयोग साथ संगत के लिए इतना उत्तम साबीत हुआ कि, उसे सिखने के लिए अनेक कलाकार आये और इस प्रकार की परम्परा में चाँटी के द्वारा प्रस्तुत बोल बंदिशों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। यही परम्परा दिल्ली के नाम से जानी जाने लगी। सिद्धार खाँ के तिन पुत्र; बुगरा खाँ, घसीट खाँ और तीसरे पुत्र का नाम अज्ञात हैं, इनकी वंश परंपरा दिल्ली

घराने के तबला वादन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनके तीन पुत्र मक्कू खाँ, मोदू खाँ और बख्शु खाँ प्रसिद्ध तबला वादक थे। लखनऊ के नवाबों द्वारा बुलाने पर मोदू खाँ, और बख्शु खाँ लखनऊ चले गए और दिल्ली घराने की शाखा लखनऊ में शुरू हुई।

दिल्ली घराने में चाँटी का उपयोग अधिकतर किया जाता हैं इसलिए इस घराने को 'चाँटी का बाज' भी कहाँ जाता है। इस घराने में तर्जनी और मध्यमा इन उंगलियों का अधिकतर उपयोग करने की वजह से 'दो उँगलियों का बाज,' भी कहाँ जाता हैं। दिल्ली बाज ने दो उँगलियों के साथ ही अनामिका इस उँगलिका भी उपयोग अपने वादन में किया। जैसे–तिरकिट तिरकिट। दिल्ली बाज यह बंद बाज होने की वजह से उँगलियों का स्वतंत्र उपयोग तथा बायाँ पर बिना हाथ उछाले वादन किया जाता हैं। बायाँ (डग्गा) पर दो अक्षर आनेपर उँगलियों में मध्यमा तथा तर्जनी का उपयोग भी किया जाता हैं। जैसे–घेगे।'के' या 'कि' अक्षर आनेपर मुठठी बंद करके बजाया जाता हैं। इस घराने में हथेलि के उँगलियों को फैलाकर निकाले गए 'के' अक्षर का उपयोग बहुत कम होता हैं। दिल्ली घराने में विस्तारक्षम रचनाएँ याने पेशकार, कायदा, रेले इत्यादी अधिक मात्रा में बजायी जाती हैं तथा गत, तिहाई, चक्रदार इनका उपयोग भी किया जाता हैं। तीट, तिरकिट, ये दिल्ली घराने के प्रमुख बोल हैं। दिल्ली बाज में धिट, तिट, किट, धा, ता, धागे, तागे, धागेन, धिना, गिना, धिनगिन, धिरधिर आदि बोलों का प्रयोग अपने वादन में किया जाता हैं। दिल्ली में प्रमुखतः चतुरश्र जाति की रचनाएँ अधिक बजाई जाती हैं किन्तु चतुरश्र जाति की रचनाओं के साथही तिस्त्र जाति की रचनाओं का भी उपयोग इस घराने में किया जाता हैं। दिल्ली घराने में त्रिताल के कायदे का एक उदाहरण निम्नानुसार :

''x धिटधागेधिनागिना	धिटधागेधिनागिना	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेतिनाकिना।
2 धातीटधागेनाधागे	धिनागिनाधिटधिट	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेतिनाकिना।
o तिटताकेतिनाकिना	तिटताकेतिनाकिना	तिटतिटतातिटता	केनाताकेतिनाकिना।
3 धातीटधागेनाधागे	धिनागिनाधिटधिट	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेधीनागिना।''[36]

दिल्ली घराने कि वंश परंपरा व शिष्य परंपरा [37]

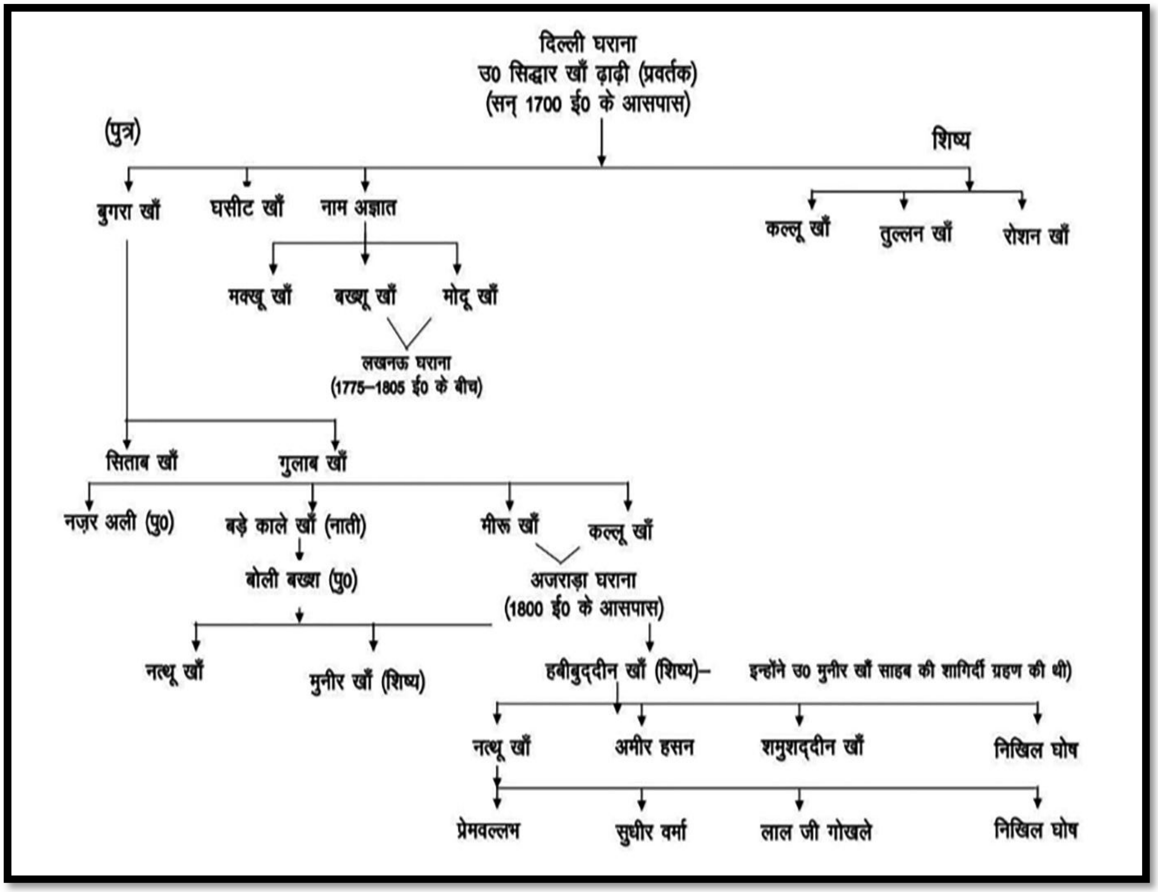

1.3.4.5. अजराडा घराना–संस्थापक–कल्लु खाँ/मिरू खाँ :

अजराडा घराना यह दिल्ली घराने का शागिर्द घराना इस नाम से जाना जाता हैं। अजराडा घराने को अजराडा नामक गाँव के निवासी दो भाई मीरू खाँ एवं कल्लू खाँ द्वारा स्थापीत किया गया। ये दो भाई सिध्दार खाँ के पौत्र सिताब खाँ सहाब से तबले की शिक्षा प्राप्त कर गाँव वापस लौट आए। इन लोगो ने अपने हुनर, अथक परिश्रम से नवीन वादन शैली का प्रादुर्भाव किया, जिसमें आड लय में बोलों की अधिकता, बायाँ के घुमकदार बोलों को प्राधान्य, तर्जनी मध्यमा के साथ अनामिका का प्रयोग इत्यादि अपने वादन में किया। शम्भू खाँ के पुत्र उ. हबीबुद्दीन खाँ अजराडे घराने कि शैली को संगीत जगत में काफी लोकप्रिय बनाया। इनका वादन काफी मधुर एवं कर्णमधुर था। खाँ सहाब एकल वादन के साथ ही संगत करने में भी उन्होंने प्रवीणता हासिल की थी। खाँ सहाब 'संगत सम्राट' के नाम से

परिचीत थे। ''उ. हबीबुद्दीन खाँ सहाब पेशकार, कायदा, रेला इन रचनाओं को ताशा पर बाखुबी निकालते थे। इस वजह से अजराडा घराने की रचनाओं में ताशा वाद्य का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।''[38]

दिल्ली घराने में कायदा बजाते समय जो शब्द भरी में बजाएँ जाते हैं उन्हीं शब्दों का उपयोग 'खाली' में भी किया जाता हैं, किन्तु अजराडा घराने में कुछ कायदो की रचनाओं की 'खाली' बजाते समय 'भरी' में जिस शब्द–प्रयोग का उपयोग किया गया हैं, उन शब्दों का उपयोग न करके खाली को अलग तरिके से सिद्ध किया। इस घराने ने 'कायदे' की 'खाली' करते समय भरी के बोलों को न लेकर दूसरे ही सोंदर्यपूर्ण शब्दों से आरंभ करने की एक सुन्दर और विशिष्ट पध्दति की नींव रखी । अजराडा घराने का एक उदाहरण निम्नानुसार :

x	घिनाऽधागेना	धात्रकधागेना	धात्रकधातीधा	घिनतिनाकिना।
2	धात्रकधातीधा	घिनाधातीगिना	धात्रकधातीधा	घिनतिनाकिना।
o	तिंगतिनाकिना	ताकेतिरकिट	ताकेतीटताके	त्रकतिनाकिडनग।
3	तिरकिटतकताऽतिरकिट	घिनाऽधागेना	धात्रकधातीधा	घिनधिनागिना।

उपर लिखे हुए कायदे के खाली में 'किनाऽताकेना तात्रकताकेना' इन बोलों के बजाएँ' तींगतीनाकिना ताके तिरकिट' इस सौंदर्यपूर्ण तथा पूरक शब्द–समूह से काल दर्शाया गया हैं। [39]

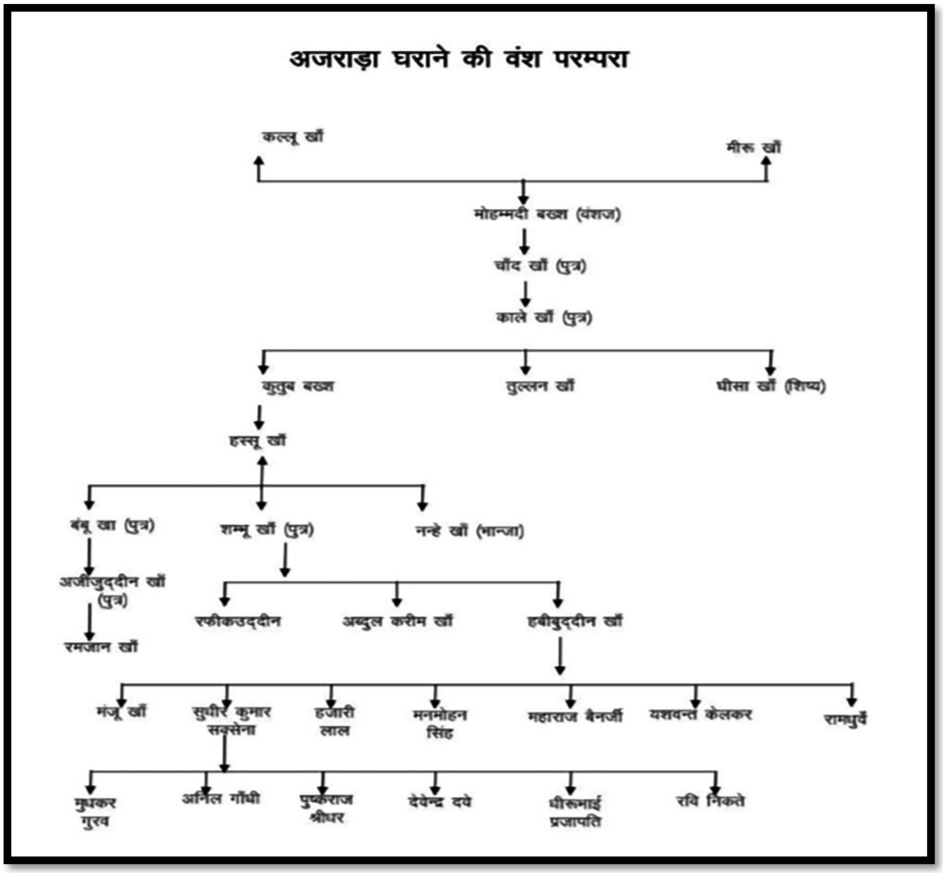

1.3.4.6. लखनऊ घराना –संस्थापक –मियाँ बक्शु /उ. मोदू खाँ :

लखनऊ घराने को खुले बाज का प्रमुख घराना माना जाता है। 18 वी सदी में दिल्ली पर नादिरशाह के आक्रमणों के कारण मोहम्मद शाह रंगीले का मन संगीत की ओर से कम हो गया और उनके दरबार में जो संगीतज्ञ थे वे सब दिल्ली छोडकर अन्यत्र जा कर बसने लगे। अब संगीत का प्रचार पूरब की ओर हो रहा था। सिद्धार खाँ के पौत्र उ.मोदू खाँ और उ. बक्शु खाँ भी लखनऊ आकर बस गए। मोदू खाँ तथा बक्शु खाँ इन्हें भी राजाश्रय प्राप्त हुआ। लखनऊ के नवाब श्रृंगारिक गायकी एवं नृत्य के शौकीन थे। लखनऊ के संगीतपर कथक नृत्य का बहुत प्रभाव था और साथ – संगत के लिए पखावज वाद्य का उपयोग किया जाता था, लेकिन कथक नृत्य में तत्कार और अन्य प्रकार जो द्रुत लय में पेश किए जाते हैं, वो पखावज वाद्य पर बजाना कठिन होने लगा। पखावज से निकलने वाला धीरगंभीर स्वर रस निर्मिति के लिए पोषक नहीं था जिस वजह से पखवाज का प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया। शृंगार और करूण रस के निर्मिति के लिए पोषक,

कोमल और लचिली वादन–शैली की कथक नृत्य को बहुत आवश्यकता थी, फलतः साथ संगत के लिए पखावज की जगह तबला इस वाद्य ने ले ली। कथक नृत्य के साथ संगत के लिए दिल्ली का शुद्ध बाज उपयुक्त न था, अतः पखावज की वादन शैली एवं रचनाओं का आधार लेकर तबला वादन शैली में परिवर्तन करना प्रारंभ किया। कथक नृत्य में पहले पढंत करने के बाद अंग संचलन द्वारा नृत्यकार अपनी प्रस्तुति करता है उसी प्रकार लखनऊ घराने के तबला वादक अपनी कुछ रचनाओं को प्रस्तुत करने से पहले मुँह से पढंत करते है और फिर उसे तबले पर निकालते है। इस वजह से लखनऊ पर कथक नृत्य का स्पष्ट रूप से प्रभाव दिखाई देता हैं। लखनऊ पर पंजाब घराने का भी प्रभाव दिखाई देता है। कहा जाता है की लखनऊ घराने के प्रवर्तक उ. मोदू खाँ के किसी उस्ताद की पुत्री थीं और उन्हें भी तबले की अच्छी जानकारी थी। मोदू खाँ को अपने ससुराल से दहेज के रूप में जो गते उपहार में मिली थी जिसे 'दहेज गत के नाम से भी जाना जाता है। लखनऊ तथा बनारस घराने में आज भी कुछ तबला वादक अपने वादन में दहेज गत बजाते हैं।

लखनऊ में विशेष रूप से कथक नृत्य शैली के साथ संगत करने हेतु तबला वादन शैली का विकास किया गया। नृत्य के अनुरूप बंदिशीयों का निर्माण किया गया। इस घराने की वादन शैली में दो उँगलियों के स्थान पर पाँचों उँगलियों का उपयोग नाद निर्मिति के लिए किया जाता हैं इसलिए लखनऊ बाज को ''थापिया'' बाज भी कहाँ जाता हैं। लखनऊ की वादन शैली में तबले पर तर्जनी और मध्यमा के साथ अनामिका इस उँगली का भी प्रयोग किया जाता हैं। बायाँ बजाते समय अंगुठे द्वारा मीण्ड, घसीट इनका प्रयोग भी लखनऊ घराने में किया जाता है। इस बाज में तबले की लव तथा स्याही का उपयोग अधिक किया जाता हैं। पखावज का प्रभाव होने की वजह से इस घराने में बायाँ के मैदान पर खुला आघात करने की प्रथा थी, लेकिन कर्णमधुरता बढाने हेतु तथा आवश्यक जगह पर कोमल और मुलायम ध्वनि उत्पन्न करने की वजह से मैदान पर खुला आघात करने की प्रथा समया नुसार कम होती गयी। इस घराने में तिट, तिरकिट जैसे बोलों को बजाने के लिए तबले पर चारों उँगलियों का प्रयोग किया जाता हैं। ठुमरी, दादरा जैसी श्रृंगार रस प्रधान गायकी के साथ संगति हेतु इस घराने के तबला वादक लग्गी, लडी, बाँट का अपने वादन में उपयोग करते हैं। लखनऊ बाज में पखावज की तरह गत,

परन, गत, टुकड़े चक्रदार स्तुति परनें आदि रचनाओं का उपयोग वादन में अधिक किया जाता हैं। इस वजह से यह बाज खुला व जोरदार दिखाई देता हैं। इस बाज में दुंग, तगन्न, धिनतक धिनतक, घिडान, धेत् धेत् क्डान, धीट, तीट, आदि बोलसमूहों का प्रयोग अधिक होता हैं। लखनऊ घराने का एक उदाहरण निम्नानुसारः

x ''धाऽघिडनगतक घिडानधागेतिट कतागदिगनधागे तिटकतागदिगन।
2 कतागदिगनधाऽ घिडानधागेतिट कतागदिगनधागे तिटकतागदिगन ।
0 ताऽकिडनगतक किडानताकेतिटकताकतिकनताके तिटकताकतिकन।
3 कतागदिगनधाऽ घिडानधागेतिट कतागदिगनधागे तिटकतागदिगन'' ।[40]

41

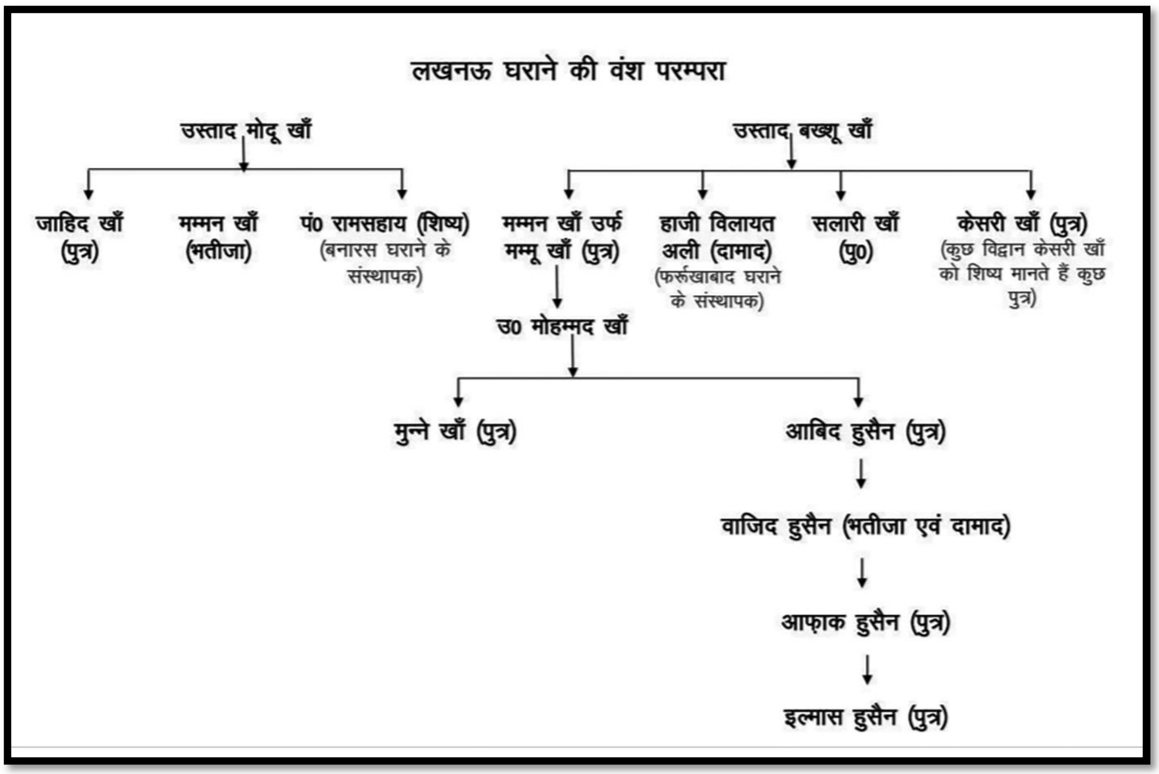

1.3.4.7. फर्रूखाबाद घराना – संस्थापक – हाजी विलायत अली खाँ :

फर्रूखाबाद यह लखनऊ घराने का शागिर्द घराना हैं। यह स्वतंत्र शैली का घराना हैं। फर्रूखाबाद घराने के संस्थापक उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ लखनऊ घराने के खलिफा उस्ताद बक्शू खाँ के शिष्य थे। इस वजह से

फर्रूखाबाद घराने में लखनऊ घराने की तरह खुला बाज दिखाई देता हैं। हाजी विलायत अली अपने युग के एक उत्कृठ तबला वादक, विद्वान रचनाकार एवं शिक्षक थे। उनका वादन अत्यंत क्लिष्ट एवं लयकारी युक्त था। गुणीजनों का कहना हैं की ऐसा नायक एवं रचनाकार सदियों में पैदा होता हैं। इन्होंने लखनऊ शैली के बाज में परिवर्तन कर के एक नवीन शैली का निर्माण किया। हाजी साहब को लखनऊ घराने का तबला उनकी पत्नि मोती बीबी से प्राप्त हुआ। लेकिन फर्रूखाबाद घराने ने लखनऊ घराने से अपनी एक स्वतंत्र वादन विचारशैली निर्माण की। इस घराने में अनेक महान कलाकार हो गए, जिन्होंने अनेक रचनाओं का निर्माण किया, जिस वजह से इस घराने मे विस्तारक्षम रचनाओं के साथ ही पूर्वसंकल्पित रचनाएँ काफी प्रचलित हुई और इस वजह ये घराना अन्य घरानों की तुलना में एक परिपूर्ण घराने के रूप में आगे आया। अन्य घरानों की तरह इस बाज में पेशकार, कायदा एवं रेला आदि रचनाएँ बजायी जाती हैं। इस घराने में रेले को 'रौ' या 'रविश' भी कहते हैं। इस घराने की और एक विशेषता हैं, जिसे चाला या चलन कहते हैं। यह रचना किसी अन्य घराने में नही बजायी जाती हैं। हाजी सहाब के गुरू भाई तथा साले मियाँ सलारी खाँ को कुछ लोग उनका शिष्य भी मानते है। सलारी मियाँ ने हाजी सहाब के गतों के तोडे जवाबी रूप में तैयार किए तथा दिल्ली के पेशकार में परिवर्तन करके उसका एक नविन रूप् तैयार किया। तदोपरान्त फर्रूखाबाद में चलन या चाल नामक वादन प्रकार का भी प्रचार किया जो आज भी काफी लोकप्रिय हैं।

डॉ. एस. आर चिश्ती अपने 'तबला संचयंन' ग्रथ में फर्रूखाबाद घराने के बारे में लिखते हैं कि,''फर्रूखाबाद की वादन शैली लखनऊ की तरह न तो नृत्य से प्रभावित थी और न तो पंजाब–बनारस की भाँति अधिक खुला और न ही दिल्ली–अजराडे की तरह बन्द। उन्होंने अपने वादन में चाँटी और स्याही को समान महत्व दिया। इस प्रकार अपने नवीन शैली के अनुरूप पृथक ढंग के गतों की रचना करके उन्होंने एक नवीन बाज को जन्म दिया। अन्य घरानो की भाँति इस घराने में भी पेशकार, कायदे आदि तो बजाएँ ही जाते हैं, जिसे वह "रौ" अथवा "रविश" कहते हैं। इस घराने की एक अन्य विशेषतः उल्लेखनीय हैं जिसे 'चलन' या 'चाला' कहते हैं। जो अन्य घरानों में दिखाई नहीं मिलता हैं।''[42]

फर्रूखाबाद घराने ने स्वतंत्र तबलावादन में बजाएँ जानेवाली सभी रचनाओं का उपयोग अपने वादन में करके यह घराना एक समृध्द एवं परिपूर्ण घराना के रूप में आगे आया। इस घराने ने मुलायम नाद के साथ ही जोरदार नाद के उपर भी अपना लक्ष्य केन्द्रित किया। पहले पेशकार सिर्फ दिल्ली बाज में ही बजाया जाता था, लेकिन बाद में फर्रूखाबाद ने किया हुआ पेशकार अत्यंत लोकप्रिय हो गया। फर्रूखाबाद में लव, चाँट, स्याही और बायाँपर मींड, घुमक आदि अंगो का समावेश किया जाता हैं। दिल्ली के तुलना में इस घराने के कायदे आकार से बडे होते हैं इसलिए इन कायदों को 'लंबछड' कायदा भी कहाँ जाता है। फर्रूखाबाद में 'धिनतक', 'धिनगिन' 'तिटघिडनग' आदि बोलों का उपयोग रेला वादन में विशेष तौरपर दिखाई देता हैं। इस घराने में मुलायम तथा जोरदार नाद का उपयोग किया जाता हैं। फर्रूखाबाद के कायदे में लगभग सभी प्रकार के निकास विधी का उपयोग किया जाता हैं। फर्रूखाबाद के गत–टुकडों में 'धगत्तकीट','धागेनाधात्रक', 'कत्तीटतीट' आदि बोलों का प्रयोग किया जाता हैं। इस घराने के सभी वादक उत्तम कलाकार तो हैं ही, इसके साथ ही वे उत्तम रचनाकार भी हैं। इस घराने में कई पीढियों से अनेक नई रचनाएँ प्रचलित होती आ रही हैं। उदा. फर्रूखाबाद घराने का एक कायदे का मुख निम्नानुसारः

x ''घिनधाऽ ऽऽघिन धगेनधा ऽनघिन। 2 तिनाकिन धगेनति नकघिन तिनाकिन।
0 धगेनधा ऽनधगे नधाऽन धाऽघिन। 3 तिनाकिन धगेनति नकधिन तिनाकिन।''[43]

फर्रूखाबाद घराने की वंश परंपरा व शिष्य परंपरा।[44]

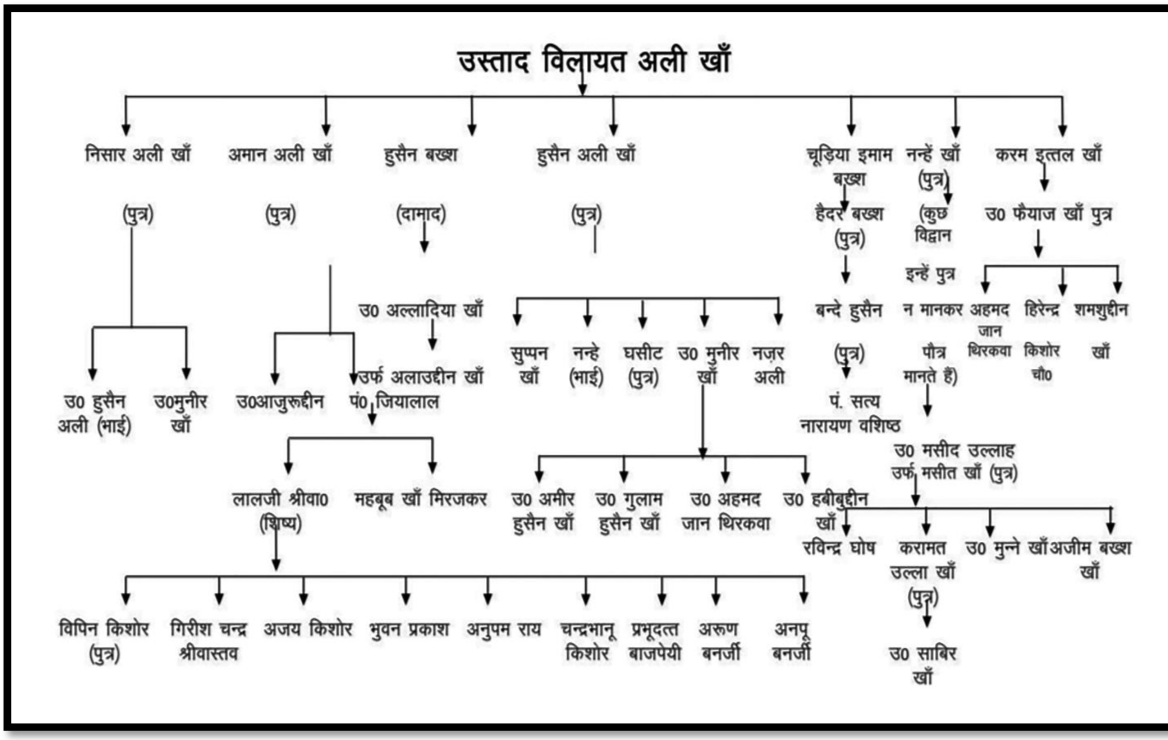

1.3.4.8. बनारस घराना– संस्थापक – पं. रामसहाय :

बनारस घराने के संस्थापक पं. रामसहायजी ने लखनऊ घराने के खलिफा उस्ताद मोदू खाँ के पास बारह वर्ष तक तबले की शिक्षा ग्रहण की और खुदकी अपनी एक नयी शैली का निर्माण किया, जिसे हम बनारस घराने के नाम से जानते हैं। पहले कथक नृत्य की साथ संगत करने के लिए पखावज का उपयोग किया जाता था। बनारस घरानेपर पखावज की वादनशैली का प्रभाव अधिक होने की वजह से इस घराने में दायाँ–बायाँ पर खुले हाथ का उपयोग किया जाता हैं। लखनऊ घराने की तरह बनारस में भी कथक नृत्य, ठुमरी, दादरा, चैती, कचरी आदि गायन शैलियों का खूब प्रचनल था। इसके साथ संगत में तबला ही बजता था, लेकिन उसे इतनी सफलता प्राप्त नही हुई। पं. राम सहायजी ने लखनऊ घराने के प्रवर्तक उ. मोदू खाँ से तबले कि शिक्षा प्राप्त करके बनारस लौटे और बनारस में तबले की वादनशैली में आवश्यक परिवर्तन करके बनारस घराने की नींव डाली। इस घराने की सबसे बडी विशेषता यह हैं की, यह घराना संगीत के गायन, वादन,

नृत्य इन सभी विधाओं के साथ कुशल संगत करने में सफल रहा। बनारस घराने में खुले बाज में बजनेवाली रचनाओं के साथ ही बंद बाज में बजनेवाली रचनाएँ याने पेशकार, कायदा, रेले आदि का भी समावेश इनके वादन में होता हैं। बनारस में ताल तीनताल के ठेके की बाँट से शुरुआत की जाती है। उठान, फर्द, परन, बाँट, लग्गी, लडी, स्तुति परन आदि रचनाओं के लिए ये घराना अधिक जाना जाता हैं। सभी घरानों में एकल तबला वादन की शुरूआत पेशकार से की जाती है, किन्तु बनारस के कलाकार अपने वादन का आरंभ उठान बजाकर करते है। कई वादकों द्वारा इसे तत्कालीन भी बजाया जाता है। इस घराने में टीप के तबले का प्रयोग अधिक किया जाता हैं। इस घराने के वादक बायाँ अन्य घराने के वादकोंसे थोडा अलग याने बायाँ का मैदान श्रोताओं की तरफ रखते हुए बजाते हैं। बनारस घराने के वादक अपने वादन में बायाँ को घसीट कर लम्बी मींड निकालने की प्रथा बनारस घराने में अधिक मिलती हैं। इस घराने में तिट, तिरकिट जैसे बोलों को बजाने के लिए लखनऊ घराने की तरह तबले पर चारों उँगलियों का प्रयोग किया जाता हैं। बनारस घराने के कलाकारों के अनुसार इस बाज में अनामिका (तिसरी उँगली) को थोडी सी टेडी करके तथा तबले पर प्रहार करके ध्वनी निकाली जाती है। इसप्रकार इस बाज में लव का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता हैं और इसी प्रकार यह बाज अन्य बाज से पृथक हो जाता हैं ।

'तालप्रबंध' इस ग्रंथ में पं. विजयशंकर मिश्रा बनारस घराने के बारे में लिखते हैं कि, "इस घराने में कायदे, से अधिक उठान, चाल गत, फर्द, परन, मुखडा, मोहरा, रेला, बाँट लग्गी, लडी, श्लोक अर्थात स्तुति–परन, तथा छंदों को महत्व दिया जाता हैं। इस घराने में 'जनानी' तथा 'मर्दानी गतें' काफी प्रसिध्द हैं। जनानी गतों में जनानी खुबसुरती तथा नजाकत देखी जाती हैं, जिसमें केवल उँगलियों तक का हिस्सा ही प्रयुक्त होता हैं। मर्दानी गतों तथा फर्दों में जोरदार बोलों का प्रयोग तथा पुरे पंजो का उपयोग किया जाता हैं। बनारस में पंजाबी गतें भी बजाई जाती हैं। इसके लिए यह कहाँ जाता हैं कि, पं. रामसहाय जी ने अपनी गुरू माँ से पंजाबी गतें सीखी, जो पंजाब के उस्ताद की लगती थीं, इसलिए बनारस बाज पर पंजाब की भी छाप है। परन्तु, पंजाब में पखावज के बोलों को बंद करके बजाया जाता हैं, जबकी बनारस में तबले के बोलों के साथ–साथ पखावज के बोलों को

खुला बजाया जाता हैं। यहाँ का वादन उठान से प्रारंभ होता हैं यद्यपि अन्य घरानों का पेशकार से होता है।''[45] बनारस घराने का एक उदाहरण निम्नानुसार :

x घिडनग तिटतिट घिडनग दिनतक। 2तकदिन तकतिट घिडनग तिनतक।

0 केडनक तिटतिट केडनक तिनतक। 3तकदिन तकतिट घिडनग दिनतक।

बनारस घराने की वंश परंपरा व शिष्य परंपरा [46]

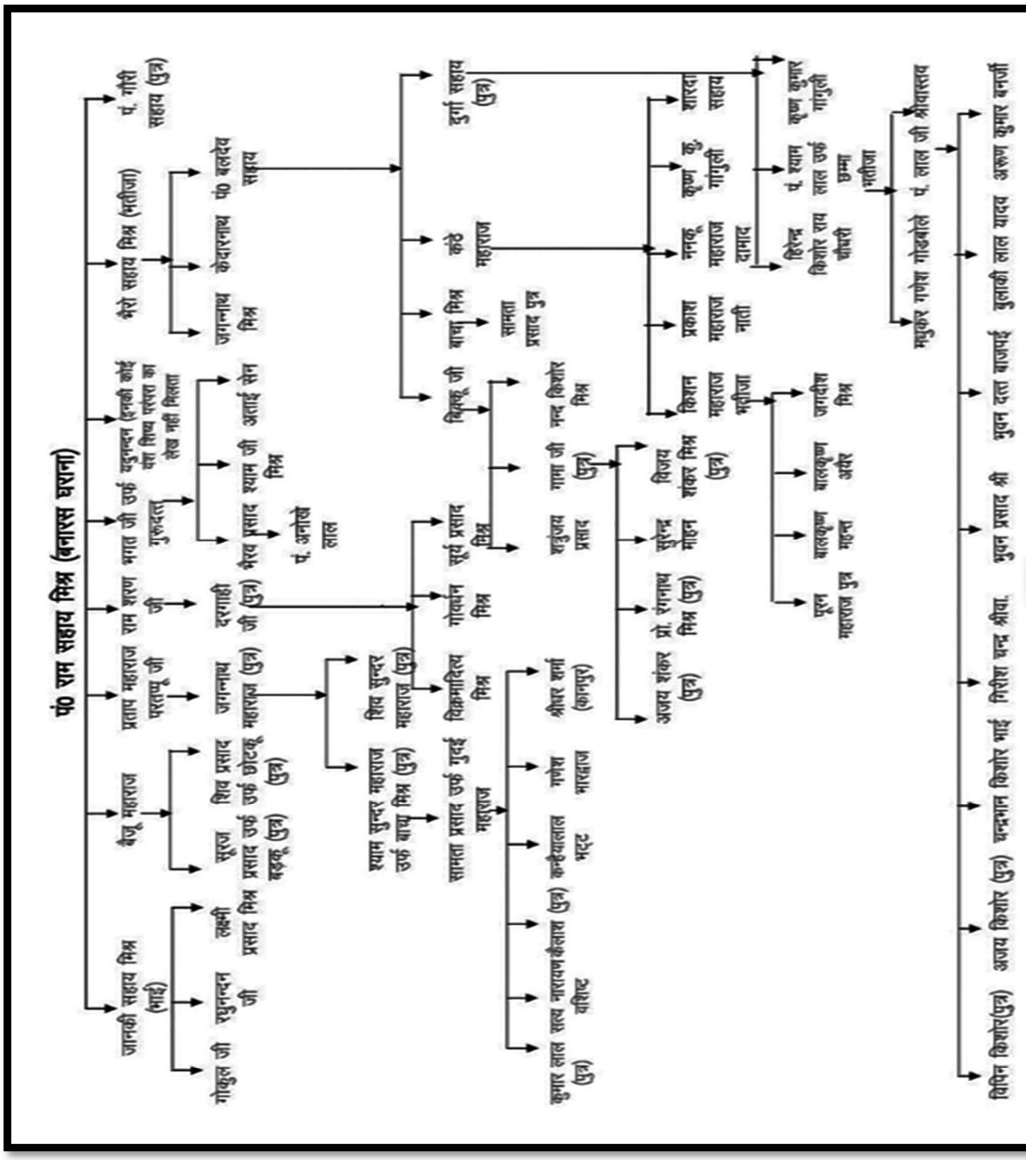

1.3.4.9. पंजाब घराना–संस्थापक–लाला भवानीदास :

यह घराना एक स्वतंत्र घराना है। अभी तक हमनें जितने भी घरानों की चर्चा की, उन सभी का सीधा संबध दिल्ली घराने से है। परन्तु यही एक घराना हैं जिसका दिल्ली घराने से कोई संबध स्थापित नही होता। दिल्ली घराने के प्रवर्तक उ. सिद्धार खाँ ढाढी तथा पंजाब घराने के प्रवर्तक लाला भवानी दास समकालीन थे। पंजाब घराना मुलतः पखावज का घराना था और पखावज के साथ दुक्कड वाद्य का भी काफी प्रचार था। पंजाब प्रांत एवं उसके आसपास के प्रचलित संगीत प्रकारों के साथ पखावज एवं दुक्कड वाद्य का प्रयोग होता था। सन 1840–50 इ० में उ. फकीर बक्श जो पखावज वादक थे उन्होंने तबले का महत्व और इस वाद्य की बढती हुई लोकप्रियता को समझा। अतः भवानीदास जी द्वारा विकसित दुक्कड पर बजनेवाले बाज को तबले पर बजाना प्रारंभ किया। उस समय तबले की आकृति तबले के जैसी मिलती जुलती थी। इसी कारण पंजाब के तबले में पूरे पंजे का प्रयोग वादन करते समय किया जाता हैं। बोलों की निकास पद्धती, विभिन्न लयकारीयों का प्रयोग एवं बंदिशो की रचना के कारण यह घराना अन्य घरानो की अपेक्षा पखावज के अत्यंत निकट लगता हैं। कालांतर में टप्पा गायन शैली के विकास होता गया और इस गायन शैली के साथ संगत के लिए अनुकुल पंजाब कि वादनशैली एवं बंदिशो का विकास होता गया।

पंजाब घराने ने लखनऊ, फर्रूखाबाद जैसे ही खुले बाज को अपनाया। पंजाब घराने के महान पखवाज वादक फकीर बक्ष जो तबला भी बजाते थे। उन्हें पंजाब घराने का खलिफा माना जाता था। फकीर बक्ष के सुपुत्र कादिरबक्ष और उनके शिष्य उस्ताद अल्लारखाँ साहब इस घराने के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ तबला–वादक माने जाते हैं। पंजाब घराने की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह हैं की, दिल्ली या पुरब घराने का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस घराने के वादनपर अंकित हैं। पंजाब घराने के बाज की निर्मिति संपूर्णतः पखवाज में से हुई हैं। पंजाब घराने की वादनशैली पखावज के काफी निकट होने की वजह से लखनऊ तथा फर्रूखाबाद की तरह पंजाब घराने के वादकों ने खुले बाज को अपनाया हैं। पंजाब घराने के कुछ श्रेष्ठ वादकोंने पखावज वादन की कला को तबलावादन में लाकर पखावज के खुले बोलों को बंद करके बजाने की शैली का निर्माण किया। पखवाज को खुले

हाथों से बजाया जाता हैं। पखावज में प्रयुक्त निकास में हाथ का रखाव बदलकर तबले के योग्य नवीन विकास शैली का निर्माण इस घराने ने किया। पखावज के समान पंजाब में बायाँ पर आटा लगाने की प्रथा आज भी कहीं–कहीं देखने को मिलती हैं, जिसे धामा कहाँ जाता हैं। दीपचंदी अंग के चाले याने मिश्र जाती के चालों को बजाना यह भी पंजाब घराने की विशेषता रही हैं। इस घराने पर पखावज का प्रभाव होने के कारण इनका का बाज खुला एवं जोरदार दिखाई देता है, जिसमें चारों उँगलियों के प्रयोग के साथ तबले पर थाप का भी खूब प्रयोग किया जाता है। इस घराने की रचनाओं में गणित का काम काफी जटील होता है। जैसे चक्रदार में साडे नौ मात्रे का पल्ला और पौने दो मात्रे का दम तथा साडे पन्द्रह मात्रा का पल्ला और पौन मात्रा का दम इत्यादी। पंजाब घराने का एक उदाहरण निम्नानुसार :

x धातिरकिटतक	तिरकिटधातिर	किटतकतिरकिट	धिंनागिना।
2 धातिधाग	धिंनागिना	धातिधाग	तिंनाकिना।
0 तातिरकिटतक	तिरकिटतातिर	किटतकतिरकिट	धिंनागिना।
3 धातिधाग	धिंनागिना	धातिधाग	धिंनागिना।

पंजाब घराने की वंश परंपरा व शिष्य परंपरा: [47]

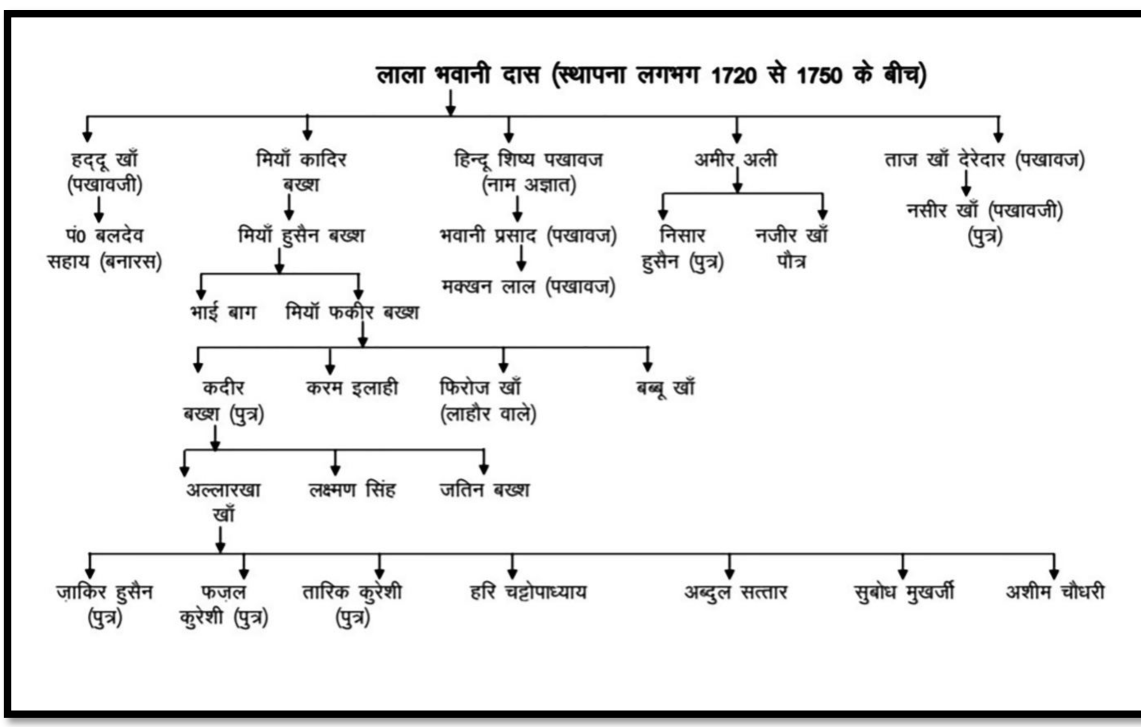

1.4 पादटिप्पनीयाँ :

1. https://youtube/zklyTekthsQ
2. सरल, भीमसेन, "तबला संगतकार एवं कलाकार", कनिष्क पुब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, आवृत्ती 2014, पृ. 90
3. दंडगे, आमोद, "सर्वांगीण तबला" (मराठी), भैरव प्रकाशन, कोल्हापुर, चौथा संस्करण, 2017, पृ. 49.
4. डॉ. मिस्त्री, अबान ए. "पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराये" प्रकाशक – पं. केफी एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, बम्बई, पृ. 107
5. डॉ. मिस्त्री, अबान ए. "पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराये" प्रकाशक – पं. केफी एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, बम्बई, पृ. 108
6. डॉ. मिस्त्री, अबान ए. "पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराये" प्रकाशक – पं. केफी एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, बम्बई, पृ. 110
7. डॉ. मिस्त्री, अबान ए. "पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराये" प्रकाशक – पं. केफी एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, बम्बई, पृ. 4
8. मोघे, उमेश, "देहली का तबला" (हिंदी), श्री. उमेश वि. मोघे, पुणे प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृ.12
9. डॉ. मिस्त्री, अबान ए. "पखावज और तबले के घराने एवं परम्पराये" प्रकाशक – पं. केफी एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, बम्बई, पृ. 111
10. माईणकर, सुधीर, "तबलावादन कला और शास्त्र", (हिंदी) गांधर्व महाविद्यालय, मिरज, प्रथम संस्करण, 2000, पृ. 11
11. मोघे, उमेश, "देहली का तबला" (हिंदी), श्री. उमेश वि. मोघे, पुणे प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 10
12. माईणकर, सुधीर, "तबलावादन कला और शास्त्र", (हिंदी) गांधर्व महाविद्यालय, मिरज, प्रथम संस्करण, 2000, पृ. 11
13. राम, सुदर्शन, "तबले के घराने वादन शैलियाएवं बंदिशे", कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ. 21
14. पाण्डेय, कृतानन्द, "तबला–वादन शिक्षा के बदलते आयाम",कनिष्क पब्लिषर्स, नई दिल्ली : 2016, पृ. 72

15. पटेल, जमुनप्रसाद, "तबला वादन कि विस्तारशील रचनाएँ", कनिष्क पब्लिषर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 5
16. तळवलकर, सुरेश, "आवर्तनः भारतीय संगीतातील, स्थूलता आणि सूक्ष्मता" (मराठी), राजहंस प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 84.
17. शुक्ल, योगमाया, "तबले का उद्भव विकास और वादनशैलियाँ" (हिंदी), कार्यान्वय निदेशलाल, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन, दिल्ली. द्वितीय संस्करण, 2000, पृ. 149.
18. शुक्ल, योगमाया, "तबले का उद्भव विकास और वादनशैलियाँ" (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन, दिल्ली. द्वितीय संस्करण, 2000. पृ. 149.
19. शर्मा, शशिकांत, "अवनध्द का कथक नृत्य में योगदान एक अध्ययन", शोधगंगा, रिसर्च पेपर, प्रकारण–5, पृ. 111.
20. तळवलकर, सुरेश, "आवर्तनः भारतीय संगीतातील, स्थूलता आणि सूक्ष्मता" (मराठी), राजहंस प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 92.
21. चिश्ती, एस्. आर., "तबला संचयन" (हिंदी), कनिष्क पब्लिशर्स्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 48.
22. दानी, हेमा, "अवनध्द वाद्य का प्राचीन प्राकृतिक रूप व महत्व", Journal – ISSN : 0976-3287- पृ. 61.
23. शुक्ल, योगमाया, "तबले का उद्भव विकास और वादनशैलियाँ"(हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन, दिल्ली. द्वितीय संस्करण, 2000, पृ. 81
24. http:/shodhganaga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/108389/1/chapter%201.pdf page 38.
25. http:/shodhganaga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/108389/1/chapter%201.pdf page 38.
26. श्रीवास्तव, विनीता, "भारतीय संगीत में अवनध्द वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषणात्मक अध्ययन"शोधगंगा, रिसर्च पेपर – पृ. 82.
27. साक्षात्कारः डॉ. अष्टपुत्रे, अजय दि. 15.10.2020.
28. दंडगे, आमोद, "सर्वांगीण तबला" (मराठी), भैरव प्रकाशन, कोल्हापुर, चौथा संस्करण, 2017, पृ.55.
29. साक्षात्कार, (शोधार्थी के गुरू) दंडगे, आमोद, दि. 15.10.2020.

30. मिश्र, विजयशंकर, "तबला पुराण" (हिंदी), कनिष्क पब्लिशर्स्, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ. 305.
31. मुळगांवकर, अरविंद, "तबला" (मराठी) पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तिसरा संस्करण, 2016, पृ. 260.
32. मिश्र, विजयशंकर, "तबला पुराण" (हिंदी), कनिष्क पब्लिशर्स्, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ. 306.
33. मुळगावंकर, अरविंद ''तबला'' (मराठी) पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय आवृत्ती–2016, पृ. 290.
34. मुळगावंकर, अरविंद ''तबला''(मराठी) पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय आवृत्ती–2016, पृ. 261
35. मुळगावंकर, अरविंद ''तबला''(मराठी) पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय आवृत्ती–2016, पृ. 263.
36. दंडगे, आमोद, "परिक्षार्थ तबलाः विशारद" (मराठी), भैरव प्रकाशन, कोल्हापुर, प्रथम संस्करण, 2014. पृ.109.
37. चौधरी, सीमा, "संगत एवं स्वतंत्र वादन के दृष्टिकोण से अवनध्द वाद्यों की भुमिका", शोधगंगा, रिसर्च पेपर, चाप्टर 3, पृ. 57.
38. साक्षात्कारः डॉ. अष्टपुत्रे, अजय दि. 15.10.2020.
39. चौधरी, सीमा, "संगत एवं स्वतंत्र वादन के दृष्टिकोण से अवनध्द वाद्यों की भुमिका", शोधगंगा, रिसर्च पेपर, चाप्टर 3, पृ.57.
40. दंडगे, आमोद,"तालार्णव" (हिंदी), अभिनंदन प्रकाशन, कोल्हापूर, प्रथम संस्करण, 2007.
41. चौधरी सीमा, "संगत एवं स्वतंत्र वादन के दृष्टिकोण से अवनध्द वाद्यों की भुमिका", शोधगंगा, रिसर्च पेपर, चाप्टर 3, पृ. 91
42. वही , पृ. 91
43. चिश्ती, एस्. आर., "तबला संचयन" (हिंदी), कनिष्क पब्लिशर्स्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 71.
44. दंडगे, आमोद, "सर्वांगीण तबला" (मराठी), भैरव प्रकाशन, कोल्हापुर, चौथा संस्करण, 2017, पृ. 60.

45. चौधरी, सीमा, "संगत एवं स्वतंत्र वादन के दृष्टिकोण से अवनध्द वाद्यों की भुमिका", चाप्टर 3, शोधगंगा, रिसर्च पेपर, पृ. 105.
46. मिश्रा, छोटेलाल,"तालप्रबंध",कनिष्क पब्लिशर्स्, नई दिल्ली, 2015, पृ. 18.
47. चौधरी, सीमा, "संगत एवं स्वतंत्र वादन के दृष्टिकोण से अवनध्द वाद्यों की भुमिका", शोधगंगा, रिसर्च पेपर, चाप्टर 3, पृ.119